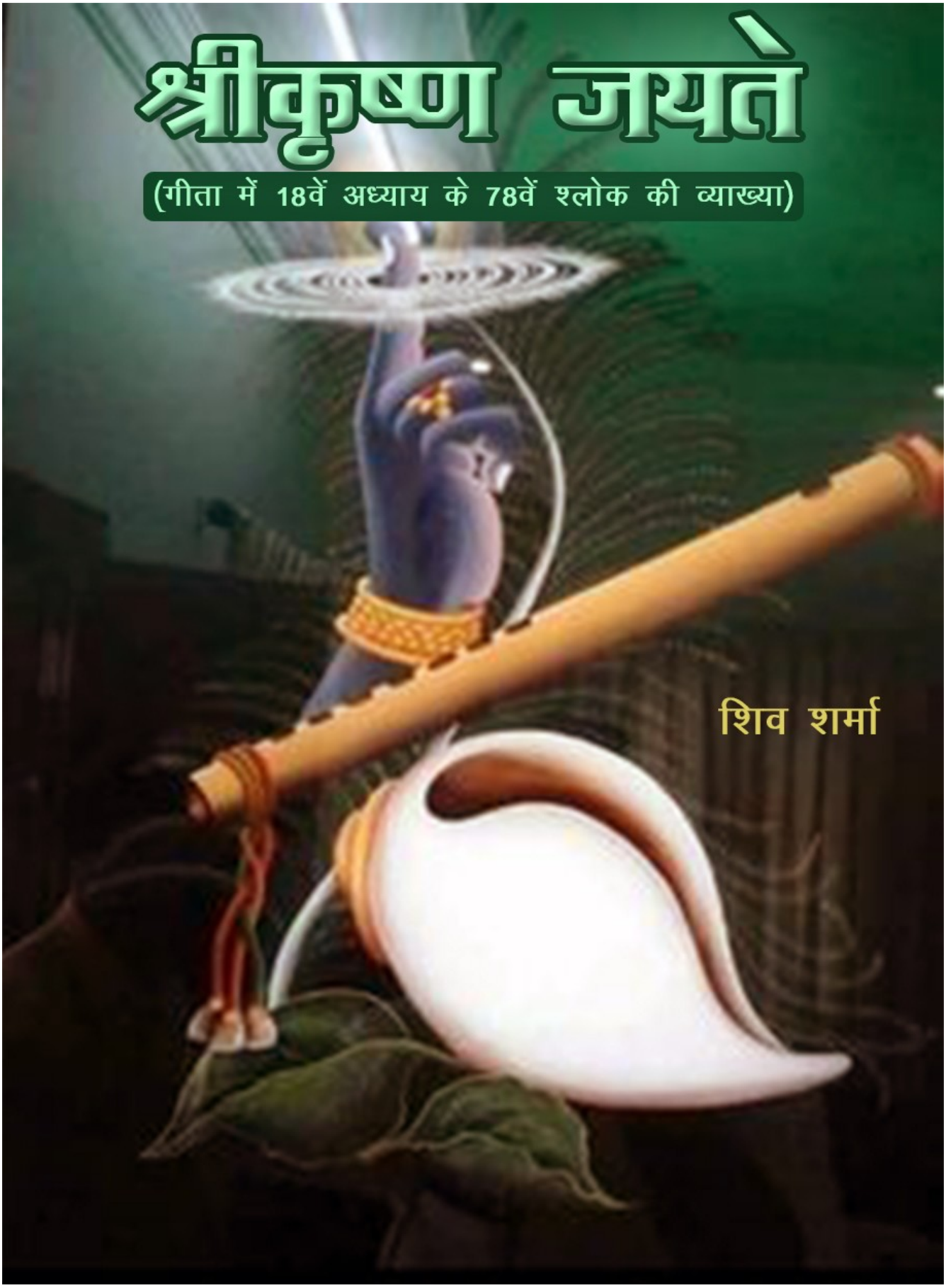
श्रीकृष्ण जयते
(गीता में 18वें अध्याय के 78वें श्लोक की व्याख्या)
शिव शर्मा

शीर्षक – श्रीकृष्ण जयते

लेखक – शिव शर्मा . 217, प्रगति नगर, कोटड़ा, अजमेर।
मो0 9252270562, 9588927938 www.geetaandadhyatm.com

प्रथम संस्करण – 2020

टाईप सेटिंग – शिव शर्मा

प्रकाशक – परा वाणी प्रकाशन, 217, प्रगति नगर, कोटड़ा, अजमेर।

Digitization and PDF Compilation :
Silver The Studio, Ajmer.
Mo – (+91) 9024032320
Website: - www.silverthestudio.com

समर्पण

पिता एवं माता क्रमशः

श्री राम भरोसे लाल शर्मा एवं श्रीमती शांति देवी शर्मा को।

इन्होंने सतत् संघर्ष की भूमि पर मुझे कर्म–योद्धा बनाया।

मेरे परिपक्व लेखन की यह पुस्तक आप को सादर समर्पित

– शिव शर्मा

शांति की वैश्विक सोच

श्रीकृष्ण जयते का अर्थ है जहां योगेश्वर कृष्ण हैं वहीं विजय है, धर्म है, शांति है, समृद्धि है, कल्याण है और नीति है। जिस कृष्ण में योग की आठों सिद्धियां व नौ निधियां हैं वहां श्री, विजय, विभूति आदि का होना निश्चित है। यही बात गीता में अठारहवें अध्याय के 78वें श्लोक में कही गई है। इसे हम ने गीता का महावाक्य कहा है।.....महावाक्य का अर्थ है ऐसा वाक्य जिस में जीव, आत्मा और परमात्मा संबंधी सत्य निहित हो। हमारे वेद एवं उपनिषद में पाँच महा वाक्य मिलते हैं – अयम् आत्मा ब्रह्म, तत्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानां ब्रह्म, सर्वम् खल्विदं ब्रह्म।। उपनिषद के महावाक्य.....महादेव ने शुकदेव जी को ब्रह्म विद्या का बोध कराते हुए कहे – सब के पहले ओम् लगाया।.....हम ने गीता में अठारहवें अध्याय के 78वें श्लोक को 'गीता का महा वाक्य' माना है – जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण (एवं धनुर्धर अर्जुन) हैं वहाँ श्री, विजय, विभूति और ध्रुव नीति है।

वेद के साथ वेदांत भी आता है। वेदांत – वेद को समझाने के लिए लिखा गया साहित्य। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद। गुरुकुल में वेद का अध्ययन। गृहस्थ में ब्राह्मण ग्रंथ। वानप्रस्थ में आरण्यक। सन्यास में उपनिषद ग्रंथ – ज्ञान, ब्रह्म विद्या का ज्ञान।

महावाक्य यानी कालजयी कथन। सार्वकालिक व सार्व जनिक कथन। ऐसे कथन जिन में विश्व एवं विश्वात्मा का सत्य निहित हो। ऐसा वाक्य जो सृष्टि में मनुष्य की सम्पूर्णता का समझा देता हो। उपर्युक्त वाक्य ऐसे ही हैं। ये समझाते हैं कि मैं अर्थात् मनुष्य में ही ब्रह्म है। तू (मनुष्य) वही, परमात्मा, है। आत्मा ही ब्रह्म है। प्रज्ञा, उच्चतम ज्ञान ही ब्रह्म है। सारे संसार में ब्रह्म व्याप्त है। इसलिए भेद, द्वंद्व, शत्रुता, वैर, हत्या आदि व्यर्थ हैं। जब सब में परमात्मा है तो वैर किस से; लड़ाई किस से; शत्रुता किस से व किस लिए? किंतु मनुष्य ने इन महा वाक्यों को भुला दिया।

अब गीता। अठारहवें अध्याय के 78वें या अंतिम श्लोक में संजय का कथन है – जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और धनुर्धर अर्जुन है वहां श्री, विजय, विभूति एवं नीति है। ऐसा मेरा अटल मत है। संक्षेप में – श्रीकृष्णार्जुन अर्थात श्री, विजय, विभूति, नीति। श्रीकृष्ण का गीतोपदेश तो 18वें अध्याय के 73वें श्लोक में पूरा हो जाता है। उस श्लोक में अर्जुन ने कहा कि – हे अच्युत! आप की कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है। अब मैं संशय रहित हो कर स्थिर हूं। अतः अब आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। पार्थ को युद्ध के लिए तत्पर करना ही कृष्ण का लक्ष्य था। वैसा हो गया – गीता पूरी हो गई। आगे के पांच श्लोक संजय के हैं। संजय को महर्षि वेदव्यास ने दिव्य दृष्टि प्रदान की थी जिस के प्रभाव से वह धृतराष्ट्र को युद्ध का आंखों देखा हाल

सुना सके। उसने कृष्ण – अर्जुन का उक्त संवाद देखा – सुना। धृतराष्ट्र को भी सुनाया। तत्पश्चात वह बोला कि – हे राजन! इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव और महात्मा अर्जुन के अद्‌भुत, रहस्यमय एवं रोमांचक संवाद को सुना। श्री व्यास जी की कृपा से मैंने योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण को अर्जुन के प्रति योग का यह परम गोपनीय उपदेश करते हुए सुना। राजन् भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस रहस्य युक्त, कल्याण कारक, और अद्‌भुत संवाद को पुनः पुनः स्मरण कर के मैं बार बार हर्षित हो रहा हूं। हे राजन, श्री हरि के उस अत्यंत विलक्षण रूप को भी पुनः पुनः स्मरण कर के मेरे चित्त में महान आश्चर्य होता है और मैं बार बार हर्षित हो रहा हूं। कथन तो महर्षि वेद व्यास का है; बस, मुँह संजय का है। वेद व्यास त्रिकालदर्शी महात्मा थे। वे कृष्ण के परम रूप को जानते थे। उन्हें ज्ञात था कि कृष्ण की कृपा से पाण्डव ही जीतेंगे। उन्होंने यह अटल सत्य प्रतिपादित किया है कि जिधर भगवान होते हैं, विजय उसी की होती है। भगवान यानी सत्य, न्याय, धर्म, नीति आदि। कृष्ण अर्थात परम कर्म, परम ज्ञान, परम कल्याण, परम शक्ति, परम सामर्थ्य। तो जिधर सब कुछ परम है उसे कौन पराजित कर सकता है। इस प्रसंग में कृष्ण का मतलब है श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का उपदेष्टा। अतः यह ज्ञान वैश्विक सोच है। विश्व के मानव समाज के कल्याण को ध्यान में रख कर बात कही गई है।

अनुक्रम

01 आलोच्य श्लोक.....08–09
02 श्लोक की पृष्ठभूमि.....10–15
03 श्रीकृष्ण कौन.....16–37
04 अर्जुन कौन.....38–42
05 जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं.....43–45
06 वहीं शोभा, कांति और समृद्धि है.....47–48
07 विजय वहीं है.....49–53
08 वहीं विभूति है.....54–57
09 वहीं अटल नीति है.....58–59
10 ऐसा मेरा मत है.....60–60
11 स्मृति – विस्मृति.....61–99
12 परिचय – श्री शिव शर्मा.....100–100

1. आलोच्य श्लोक

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

अन्वय – यत्र, योगेश्वरः, कृष्णः, यत्र, पार्थः, धनुर्धरः।
तत्र, श्रीः, विजयः, भूतिः, ध्रुवा, नीतिः, मतिः मम।

सामान्य अर्थ – जहां योग शक्तियों के स्वामी श्रीकृष्ण हैं। साथ में कृष्ण भक्त अप्रतिम धनुर्धर अर्जुन है। तो समझ लो कि वहीं युद्ध में विजय है। इतना ही नहीं, श्री यानी सौभाग्य एवं ऐश्वर्य भी उसी तरफ हैं। इन दोनों से ही विश्व का कल्याण सम्भव है। जहां ये हैं वहीं सारी नीतियां है – उधर अनीति, अधर्म, अन्याय व असत्य ठहर ही नहीं सकते हैं। संजय कहता है कि ऐसा मेरा मत है।
विजय यानी इंद्रियों पर नियंत्रण; मन, बुद्धि, अहंकार का संयम। श्री अर्थात् आत्मा का उन्नयन एवं समाज में समृद्धि। कल्याण यानी सत्य, न्याय व धर्म की स्थापना। नीति का मतलब है सम्यक राजनीति, अर्थ नीति, समाज नीति और विश्व समभाव की अवधारणा। श्रीकृष्ण ने गीता में किसी एक जाति, धर्म या देश की बात नहीं की है। परम तो व्यापक है। अतः उसकी बात भी वैश्विक होती है।.....अर्जुन भक्त है। भक्त भगवान से अलग नहीं होता है। उसमें भी परमात्मा प्रकट रहते हैं। उसका गाण्डीव धनुष भी मूलतः भगवान महादेव का बनाया हुआ है – संहार का प्रतीक है।

महादेव भी श्रीकृष्ण के परब्रह्म रूप में समाविष्ट हैं। तात्पर्य यह कि कृष्ण से पृथक कुछ है ही नहीं। इसलिये श्रीकृष्ण जयते ही सत्य है। इसलिए सत्य कथन तो यह है कि जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं वहीं श्री, विजय, विभूति एवं नीति है।

एक और बात – कृष्ण के पास मोहमंत्र सिद्ध था। उक्त मंत्र का जब युद्ध के वाद्य पर प्रयोग किया जाता है तो शत्रु सेना के हौंसले पस्त हो जाते हैं। ऐसे ही इस का प्रयोग सीधे दुश्मन की सेना पर किया जाए तो वह सुस्त हो जाती है, उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा जीतने का जोश कमजोर पड़ जाता है। स्वयं कृष्ण के व्यक्तित्व में भी इतना प्रभाव था कि उन्हें देखते ही शत्रु सम्मोहित हो जाता था। इसलिए श्रीकृष्ण जयते ही सत्य है। अर्जुन तो निमित्त मात्र था।

2. श्लोक की पृष्ठभूमि

पूरी गीता इस श्लोक की पृष्ठभूमि है। मोहजनित कुण्ठा में डूबा हुआ अर्जुन युद्ध कर्म से विमुख हो जाता है। कह देता है कि युद्ध नहीं करूंगा। तब कृष्ण उसे कर्तव्य कर्म के लिए प्रेरित करते हैं। कर्म, ज्ञान, भक्ति, आत्मा, ब्रह्म, देह की नश्वरता, दैवी – आसुरी गुण आदि बातें सविस्तार समझाते हैं। अंततः अर्जुन अठारहवें अध्याय के 73वें श्लोक में कहता है कि मेरा मोह नष्ट हो गया है। अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा यानी युद्ध करूंगा। फिर संजय उक्त ज्ञानोपदेश की प्रशंसा करते हुए प्रस्तुत श्लोक बोलता है। इस कथन का अभिप्राय है कि – हम दिव्य दर्शन, योग, और धनुः (ऊर्जा), का संयोग करें , आत्म शक्ति को कल्याण में लगाएं। एक तरफ पूर्ण सामर्थ्य एवं दूसरी तरफ पूर्ण समाज सेवा, समाज का कल्याण। हम ज्ञान या अध्यात्म का दुरुपयोग नहीं करें। हम शक्ति पा कर बर्बर नहीं बनें। दिव्य जीवन का तत्व है धर्म। श्रीकृष्ण जैसे ब्रह्मज्ञानी ही शक्ति को मानव कल्याण में लगा सकते हैं। पहले तो योग, उपासना द्वारा परमात्मा की प्राप्ति फिर उसकी इच्छानुसार विश्व कल्याण (धनुः) में प्रवृति।

– योग की शक्तियों के स्वामी श्रीकृष्ण
– देह एवं शस्त्र शक्ति का सिरमौर अर्जुन
– आत्मा परमात्मा का योग, धनु – ऊर्जा।.....आत्मा के सामर्थ्य का अवतरण, विश्व कल्याण का आयोजन।

श्री – सौभाग्य। विजय – न्याय की, धर्म की, सत्य की। विभूति – कल्याण – समाज का, विश्व का, धर्म की पुनर्स्थापना, साधुओं का त्राण।

अटल नीति, नैतिकता – राज की नीति, धर्म की नीति, अर्थ की नीति, आत्म कल्याण की नीति।

इस तरह गीता विश्व कल्याण का उपनिषद है।

74 – 77 श्लोक में संजय ने पुष्ट किया है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उक्त उपदेश किया था। वह अद्‌भुत, गोपनीय, रहस्यमय एवं कल्याणकारी है। डा. राधकृष्णन ने इसे गुरु – शिष्य संवाद कहा है। स्वयं कृष्ण ने भी कहा है कि इस उपदेश का पारायण करना, सुनना, दूसरों को सुनाना एवं इसकी व्याख्या करना परम कल्याण कारी कर्म है। कर्म कई अवस्थाओं में किये जाते हैं – निष्काम व सकाम अवस्था। कर्ता के अभिमान व निरभिमान वाली अवस्था। त्रिगुणात्मक अवस्था। दैवीय और आसुरी गुणों वाली अवस्था। देह बुद्धि एवं आत्म बुद्धि की अवस्था में।

अब देखें कि उक्त युद्ध कितना भयानक था

– विश्व का सब से बड़ा युद्ध। न्यूनतम 42 लाख सैनिक, हजारों हाथी, घोड़े व रथ पर सवार योद्धा। तो कुल एक करोड़

सैनिक व असैनिक मारे गये। जहां आज हरियाणा राज्य है वहां कुरुक्षेत्र का मैदान था। आग्नेयास्त्र, दिव्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र जैसे संहारक अस्त्र। एक साथ अनेक बाण फेंकने वाले यंत्र। भीष्म, अर्जुन, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, भूरिश्रवा, भगदत्त शल्य आदि महारथी। इन सारे पक्षों को ध्यान में रखें तो लगता है कि उस युद्ध में पाण्डवों की विजय का सत्य इस श्लोक में व्यक्त है। श्रीकृष्ण की आत्म शक्ति एवं अर्जुन की ऊर्जा, शौर्य आदि के बिना ऐसा असम्भव था। अकेले भीष्म ही अजेय थे; ऊपर से द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा जैसे महारथी! पाण्डव पक्ष में अर्जुन के अलावा और कोई योद्धा इनका मुकाबला करने में सक्षम नहीं था।

इतने सैनिकों का भोजन, घायलों की चिकित्सा, मल मूत्र विसर्जन की व्यवस्था, उठने, बैठने, शयन आदि का प्रबंध! मरने वालों के अंतिम संस्कार की दैनिक व्यवस्था! कितना व्यापक सामरिक प्रबंध होगा! हम तो कल्पना ही नहीं कर सकते हैं। और मात्र 18 दिन! यह सब श्रीकृष्ण की ही यौगिक शक्ति से सम्भव हुआ होगा।

सेना एवं महारथी –

कुल 18 अक्षौहिणी सेना – सात पाण्डव एवं ग्यारह कौरव पक्ष में। एक अक्षौहिणी सेना में – 21870 रथ, 21870 हाथी,

65610 घुड़सवार, 109350 पैदल सैनिक। रथ, हाथी एवं घोड़ों पर सवारों को मिला कर एक अक्षौहिणी में 634243 सैनिक होते थे। अठारह अक्षौहिणी में कुल सैनिक हुए 1,14,16,374। विवरण– पैदल सेना – 1968300; रथ सेना – 3,93,660; हाथी सेना – 3,93,660; घुड़सवार – 11,80,980; न्यूनतम सेना – 3906600; अधिकतम सेना – 1,14,16,374।

योद्धा – अर्जुन, भीष्म, द्रोणाचार्य, भगदत्त, कर्ण, अश्वत्थामा, भीम, सात्यकी, धृष्टद्युम्न, कृतवर्मा, भूरिश्रवा, अभिमन्यु। ये सब महारथी थे। इनके अलावा दुःशासन, शल्य, द्रुपद, अलम्बुष, घटोत्कच आदि विकट योद्धा थे। सब के सब मारे गए – पाण्डव एवं कृतवर्मा, कृपाचार्य, सात्यकी, युयुत्सु व अश्वतथामा शेष रहे। इतना विनाशक युद्ध था। इसलिए संजय का कथन एकदम सत्य ही है।

श्रीकृष्ण – ग्यारहवें अध्याय के 33वें श्लोक में कहते हैं कि ये सब योद्धा पहले ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। तू तो निमित्त मात्र है। आगे 34वें श्लोक में कहा– मेरे द्वारा मारे हुए इन शूरवीर योद्धाओं को तू मार। युद्ध में तू वैरियों को जीतेगा। इस से पहले अर्जुन को दिखा दिया कि कौरव पक्ष के सारे महारथी कृष्ण के विराट मुंह में जा रहे हैं। तात्पर्य यह कि कृष्ण के असीम सामर्थ्य से ही उक्त युद्ध में पाण्डवों को विजय प्राप्त हुई।

इसलिए हम यों कहें कि जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं वहीं श्री, विजय, विभूति और नीति है।

गीता – गीता में योग है, ज्ञान है, भक्ति है। विजय के सूत्र हैं। सौभाग्य की विधि है। कल्याण के लिए प्रेरणा है। नीति का संकल्प है। कर्मक्षेत्र का विस्तार है। बोध का वैभव है। भक्ति का आनंद है। आत्मा– परमात्मा की एकरूपता का सत्य है। आत्मा, ईश्वर, महेश्वर, सगुण ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म, अक्षर ब्रह्म का प्रतिपादन है। सन्यास का स्वरूप है। प्रकृति–पुरुष का चिंतन है। देवी आसुरी गुणों का विवेचन है। देव योनि, मनुष्य योनि एवं तिर्यक योनि का विश्लेषण है। मोक्ष की अवधारणा को समझाया गया है।

गीता सब के लिए है – राजा रंक; स्त्री पुरुष; पापी पुण्यात्मा; ब्राह्मण शूद्र; हिंदू गैर हिंदू आदि सब के लिए। गीता में भेद तो है ही नहीं। यह अभेद का ग्रंथ है। द्वैत से अद्वैत तक पहुंचाने वाला उपनिषद है। सकाम से निष्काम तक ले जाती है गीता। मृत्यु से अमृत्यु तक ले जाती है। अज्ञान से ज्ञान की तरफ बढ़ाती है। वैर छोड़ कर निर्वैर की अवस्था में ठहरने के लिए उपदेशित करती है।

गीता – सत्य, न्याय, नीति, धर्म, एवं वैश्विकता का गान है। इस एक श्लोक में यह सब समाहित हैं। सत्य, न्याय, नीति

और शांति सारे विश्व में जरूरी है। गीता वही बात करती है। निमित्त तो कुरुक्षेत्र है किंतु ध्येय सारा विश्व है। माध्यम तो केवल अर्जुन है लेकिन सम्बोधन में सम्पूर्ण विश्व है। योग की असीम अवस्था में खड़े रह कर जो उपदेश किया गया था वह किसी एक देश काल तक सीमित कैसे रह सकता है? परमात्मा के मुंह से परम का ज्ञान ही आएगा। ऐसा ज्ञान सब के लिए होगा। अतः गीता में विश्वोदय का उद्‌बोधन है। विश्व के लिए ज्ञानोदय है। विश्व शांति की राह है। सकारात्मक परिवर्तन के लिए वैश्विक संदेश है।

श्रीकृष्ण के विराट रूप में सारा ब्रह्माण्ड है। उस में विश्व व्यापी असत्य, अन्याय, अधर्म एवं अनीति से 'परित्राणाय' का संकल्प है। एक व्यक्ति, एक परिवार, एक देश आदि की बात तो हम मनुष्य गण करते हैं। भगवान तो मनुष्य की सम्पूर्णता वाली अवस्था है। अतः वहां सम्पूर्णता की बात होगी, अपूर्णता की नहीं। कृष्ण का कथन है कि मुझ से अलग कुछ भी नहीं है। मैं सब में व्याप्त हूं। यह नहीं कहा कि केवल भारत के मनुष्यों में व्याप्त हूं। एक अन्य कथन – मैं ब्रह्मा रूप में सृष्टा हूं ; विष्णु के रूप में सब का पालन करता हूं ; और रुद्र रूप में संहार भी मैं ही करता हूं। मैं बर्फ में पानी की तरह सब में व्याप्त हूं। इस तरह कृष्ण विश्व पुरुष हैं। वे विश्व के लिए उपदेश करते हैं। उनके संदेश की विषय वस्तु कहीं भी अप्रासंगिक नहीं है। इसीलिए गीता वैश्विक ग्रंथ है।

3. श्रीकृष्ण कौन?

इस श्लोक का अर्थ समझने के लिए जरूरी है हम कृष्ण को समझें। 'यत्र योगेश्वरो कृष्णः' क्यों कहा गया है? कृष्ण पूरे ब्रह्माण्ड का प्रत्यक्षीकरण करा देने वाली चेतन ऊर्जा का सांकेतिक नाम है। कृष्ण, आत्मशक्ति के यूनिवर्सल फैलाव की संज्ञा हैं। कृष्ण वह श्यामलता है जो ब्रह्माण्ड के अंधकार में खरबों तारों के प्रकाश से उभरती है। वे आनंदमय कोष की सम्पूर्णता हैं। सामान्य मनुष्य का आधार अन्नमय कोष है। साधु का आधार प्राणमय कोष है। मुनि गण मनोमय कोष से ऊर्जा लेते हैं। योगी, विज्ञानमय कोष में स्थिर रहते हैं। अवतारी मनुष्य, आनंदमय कोश में विचरण करते हैं। यह ब्रह्माण्ड का सूक्ष्म रूप है। यही कारण है कि कृष्ण ने अपने ही चिदाकाश से अर्जुन को विराट रूप दिखा दिया था। तो कृष्ण जब कहते हैं कि मैं तुम्हारा सारथी हो जाऊंगा, तब इसका अर्थ है कि ऐसी परम शक्ति तुम में सक्रिय हो जाएगी।

गीता में पंद्रहवें अध्याय के छठे श्लोक में कहा गया है कि परमात्मा का निवास स्थान परमधाम भी स्वयम् प्रकाश है। वह सूर्य, चांद, तारों आदि से रौशन नहीं है। मतलब यह कि ब्रह्म तो दिव्य प्रकाश रूप है ही, उसका धाम भी प्रकाश स्वरूप है। कठोपनिषद का ऋषि कहता है कि ये सूरज, चांद, तारे आदि तो स्वयं उस परमात्मा से रौशन हैं; इन सब में उसका ही प्रकाश

है। ऐसे ही जाबाल ऋषि का कथन है – वह योगियों का परमधाम सदानंद, परमानंद, सनातन, शांत एवं स्वयं प्रकाश है। .....एक कवि ने लिखा है कि तू रूप है किरन में, सौंदर्य है सुमन में। तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में। अर्थात् सब कुछ ईश्वर ही है। उससे अलग कुछ नहीं। वह सारे तत्वों का सार है। यह सार प्रकाश ही है।

श्रीकृष्ण भगवान हैं। भगवान कौन? यह शब्द भग धातु से बना है। भग के छह अर्थ होते हैं – नित्य ऐश्वर्य, बल, स्मृति, यश, ज्ञान और सौम्यता। छांदोग्य उपनिषद में दो अन्य गुण जोड़े गए हैं – अजरा एवं वैराग्य। पाली भाषा के अनुसार भगवान शब्द भज धातु से बना है। भज का मतलब है – तोड़ना। जो राग, द्वेष, मोह आदि के बंधन को तोड़ चुका है। गीता में तो कृष्ण ने दसवें अध्याय में अपने परम रूप की 82 विभूतियां बताई हैं। फिर ग्यारहवें अध्याय में विश्व रूप दिखाया। तो कृष्ण ऐसे हैं – ब्रह्म, पूर्ण पुरुष। वे एक अन्य प्रसंग में कहते हैं कि मेरी अष्टधा प्रकृति ऐसी है – पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार। इस प्रकृति में अपनी चेतना का बीजारोपण करता हूं। इसी के परिणाम स्वरूप सृष्टि की रचना होती है। तो ऐसे कृष्ण जहां हैं वहां श्री, विजय, कल्याण एवं नीति ,सब कुछ है। जब वेद व्यास जी 'योगेश्वरः कृष्णो' कहते हैं तब उनका आशय है कि जिधर स्वयं परमात्मा हों वहीं श्री विजय है।

ये कृष्ण बाहर भी हैं और हमारे अंदर भी। गीता में पांच बार कहते हैं कि मैं सब प्राणियों के हृदय क्षेत्र में विद्यमान हूं। उधर 15वें अध्याय के 15वें श्लोक में कहते हैं कि मैं सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामी रूप से स्थित हूं। मेरे से ही स्मृति, ज्ञान, अपोहन (बुद्धि से भ्रम, विपर्यय आदि को हटाना) आदि होते हैं। इसी अध्याय के 19वें श्लोक में कहते हैं कि मैं वासुदेव ही परमेश्वर हूं।

कृष्ण, राधा और रास :– कृष्ण पूर्ण थे। उनका एक रूप राधा और गोपियों के साथ देखने में आता है। यहां केवल रास वाला प्रसंग लेते हैं। राधा नहीं होती तो रास नहीं होता। रास के बिना कृष्ण में कुछ खास नहीं होता– वे वैश्विक नहीं रहते। ब्रह्माण्ड में सारे चांद तारे रास कर रहे हैं। गेलेक्सीज़ से ले कर क्वसार तक यूनिवर्सल ग्रेविटेश्नल पॉवर में बंधे हुए गति कर रहे हैं। उनकी गति में एक लय है। यह लय ही रास है। तो रास ब्रह्माण्डीय नृत्य है। वह द्वैत का रास है। राधा – कृष्ण अद्वैत का रास है क्योंकि राधा स्वयं कृष्ण के ही भीतर के प्रेम का साकार रूप है। वह परम प्रेम का आधार है। कृष्ण उसके प्रेम के आधेय हैं। आधार व आधेय अलग नहीं किये जा सकते हैं। ब्रह्माण्ड है तो ग्रह तारे हैं। ब्रह्माण्ड नहीं तो गेलेक्सीज़ भी नहीं। ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का कोई आर पार नहीं। ऐसे ही राधा कृष्ण के प्रेम की कोई सीमा नहीं। वह अपार है। हमारी सोच से परे। आठ आठ पटरानियों के बीच में भी कृष्ण राधामय रहते थे? कैसा था

वह प्रेम! कोई भी एतराज नहीं! राधा सब को स्वीकार्य। उधर गोकुल में कृष्ण के साथ गोपियों का रास भी सब को स्वीकार – कोई कुलटा या बदचलन नहीं। किसी पर लांछन नहीं। रास में पूरा गोकुल नाच रहा है, प्रकृति नाच रही है। सब के सब कृष्णमय। कृष्ण से पृथक कुछ नहीं। ब्रह्माण्ड से अलग कोई पिण्ड नहीं, जीव नहीं, वनस्पति नहीं। ब्लैक होल व ब्लैक एनर्जी भी इसी यूनिवर्स में। सृजन और संहार एक साथ। रास में मरणशील देह एवं अनश्वर कृष्ण तत्व एक साथ! रास में देह बोध मिट जाता था – अनश्वर आत्मा व परमात्मा एक हो जाते थे। तो राधा नहीं यानी रास नहीं। रास नही ंतो परम के साथ एकत्व का एहसास नहीं।

क्वांतम, एक कण करोड़ों मील दूर रहते हुए भी दूसरे जैसा हो जाता है। रास में भी सब कृष्ण जैसे हो जाते हैं, आनंद से भरपूर। हर एक गोपी के साथ कृष्ण नजर आते हैं। ऊपर आकाश में सात लोक – सातवें लोक में कृष्ण का ठिकाना। हमारी देह में सात शरीर – स्थूल, वायव्य, मनस, सूक्ष्म, आत्म, ब्रह्माण्डीय एवं चेतन ऊर्जा। देह में सात सूक्ष्म चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्त्रार चक्र। मूलाधार में प्राण शक्ति। केंद्र में कृष्ण। प्राण शक्ति सारे चक्रों को बेधती हुई सहस्त्रार तक जाती है। रास में कृष्ण की परम चेतना सातों घेरे पार करते हुए सब को आनंदित करती है। उधर सात ऋषियों का समूह सप्तर्षि, ऋषियों में भी जो श्रेष्ठ हैं। रास में जो

श्रेष्ठ जीवात्माएं हैं वे ही कृष्ण के साथ हैं। रास के अंतिम दौर में केवल कृष्ण नजर आते हैं। उधर सहस्त्रार चक्र में केवल परम ऊर्जा की अनुभूति रहती है। देह बोध छूट जाता है। रास में जीव बोध मिट जाता है। तो रास ब्रह्माण्डीय पिण्डों में लय, एकरूपता एवं संगीत का प्रतीक है। हमारे भीतर भी जब सातों सूक्ष्म चक्र एक्टीवेट हो जाते हैं तब ऐसी ही अनुभूति होती है। बांसुरी जैसी धुन सुनाई देती है। देहबोध छूट जाता है। लिंग भेद मिट जाता है। सोहम् सार्थक हो जाता है। तो, रास हमें मैं से सोहम् तक ले जाने की नृत्य मय प्रक्रिया है। भक्त के साथ भगवान यों ही नहीं नाचते – उसे पार लगाते हैं, उसके जीव भाव को नष्ट करते हैं। यह प्रेम योग है।

इस तरह कृष्ण में तीनों योग का समन्वय है – गीता ज्ञानयोग। राधा प्रेमयोग। सारा जीवन कर्मयोग। शौर्य ऐसा कि जरासंध को अकेले ही 17 बार हराया। धैर्य इतना कि गांधारी के शाप को मुस्कराते हुए स्वीकार किया एवं सारे यदुकुल का विनाश चुपचाप देखते रहे। सामर्थ्य ऐसा कि द्रोपदी की लाज बचाई, काल नेमि को मारते हुए मुचुकंद का उद्धार किया और कौरवों की भरी सभा में दुर्योधन को ललकारा कि यदि बांध सकते हो तो मुझे बांधो। .....और उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की प्राण रक्षा के लिए महर्षि वेद व्यास को कहा – हाँ, मै ब्रह्मचारी हूँ! कृष्ण का व्यक्तित्व सातवें आसमान तक ऊपर उठ गया।

वेद व्यास ने महाभारत युद्ध के चालीस वर्ष बाद ग्रंथ लिखा। उसी में गीता है। उन्होंनें जो अंतिम श्लोक में संजय के मुंह से 'यत्र योगेश्वरो कृष्णः' कहा तो उस में कृष्ण का ऐसा सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाहित है। न क्लेश, न कर्मेच्छा, न कर्मफल और न कर्म संस्कार! यह हैं कृष्ण।

गीता में श्रीकृष्ण – गीता का दिव्य उपदेश देने वाले, स्वयं को पर ब्रह्म कहने वाले व खुद को अनादि – अनंत बताने वाले श्रीकृष्ण कौन हैं? इसका जवाब 8वें अध्याय के तीन से लेकर बाईसवें तक बीस श्लोकों में मिलता है–(1) आठवें अध्याय के 8वें श्लोक में इसे 'परम दिव्य पुरुष' कहा गया है जो प्रकाशमय है (2) वह 'पुरुष दिव्यम्' भक्ति युक्त मनुष्यों को प्राप्त होता है – आठवें अध्याय का दसवाँ श्लोक (3) इसी अध्याय के 13वें श्लोक में ब्रह्म को 'ओऽम् इति एकाक्षरम्' बताया है (4) अठारहवें श्लोक में ब्रह्मा 'अव्यक्तात' कहा गया है (5) बीसवाँ श्लोक – उस अव्यक्त, सूक्ष्म ब्रह्म से भी अति परे जो विलक्षण सनातन अव्यक्त भाव है वह परम दिव्य पुरुष सब भूतों या सारे संसार के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता – यहाँ ब्रह्म को 'अव्यक्त भाव' कहा है (6) इक्कीसवाँ श्लोक – अव्यक्तः अक्षरः ; तत् मम् परम् धाम – वह अव्यक्त, सनातन, अक्षर भाव तथा दिव्य प्रकाश रूप ब्रह्म जहाँ स्थित है उसे परम धाम कहते हैं। यह गति प्राप्त करने वाला मनुष्य लौट कर वापस दुनिया में नहीं आता है (7) बाईसवाँ श्लोक – वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष है; उससे सारा संसार परिपूर्ण है (8) अठारहवें

अध्याय का 53 वाँ श्लोक – वह सत् चित् आनंद के अपार समूह जैसा है।

इस तरह श्रीकृष्ण मात्र देवकीनंदन देहधारी महापुरुष तक ही सीमित नहीं हैं; वे योग बल से परब्रह्म वाली अवस्था में स्थित हो कर कहते हैं कि मेरे में मन लगा, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा कर और मुझे ही प्रणाम कर। देहधारी कृष्ण या अन्य कोई भी अवतारी पुरुष तो परम गति तक पहुँचने के माध्यम होते हैं। इस 'परम चेतना' के अनेक नाम हैं – श्रीकृष्ण, महादेव शिव, आद्याशक्ति, खुदा, गॉड आदि। तो श्रीकृष्ण जब कहते हैं कि 'मेरा भक्त' बन, तो उनका आशय स्वयं के परम परमात्म रूप से ही है जो अव्यक्त, अनादि व अनंत है। चूँकि अव्यक्त भाव रूप भगवान की आराधना करना सामान्य लोगों के लिए सम्भव नहीं है; इसलिए उसके साकार रूप श्रीकृष्ण की भक्ति करने के लिए कहा गया है। यह सत्य सभी अवतारी महापुरुषों पर लागू होता है।

खैर, इस प्रसंग में हमारे लिए समझने की बात केवल यह है कि सगुण ब्रह्म कृष्ण की भक्ति करने का मतलब उनके परब्रह्म परमात्म रूप का भजन करना ही है। यह परम चेतना सर्वव्यापी है। अतः हम सब के बाहर–भीतर भी यह विद्यमान है – बाहर ऊर्जा के रूप में व भीतर आत्मा के रूप में। यह आत्मा भी श्रीकृष्ण ही है। गीता में पाँच बार ऐसा कहा गया है – नौवें अध्याय का 29वाँ श्लोक; अहम् सर्वभूतेषु समः यानी मैं सारे जड़ – चेतन में

व्याप्त हूँ। मैं अपने भक्त के हृदय में रहता हूँ। दसवें अध्याय का बीसवाँ श्लोक–अहमात्मा सर्वभूताशयस्तिः अर्थात् मैं सब के हृदय में स्थित सब का आत्मा हूँ। तेरहवें अध्याय का 17वाँ श्लोक– ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः.....हृदि सर्वस्य विष्ठितम। इसका अर्थ है कि वह ब्रह्म अज्ञान रूपी अंधकार से परे परम ज्योति स्वरूप सब के हृदय में विशेष रूप (आत्मा) से स्थित है। इसके आगे कहते हैं कि 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ठो'। इसका मतलब है – मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामी रूप से स्थित हूँ (15वें अध्याय का 15वाँ श्लोक)। तत्पश्चात 18वें अध्याय के 61वें श्लोक में कहा गया है – ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन निष्ठति। भगवान कहते हैं कि ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।

इस तरह ईश्वर के दो रूप स्पष्ट हुए–परम चेतना और आत्मा। ये दोनो ही दिव्य प्रकाश रूप हैं। जरा सोचो कि हमारे हृदय में कोई देहधारी भगवान (श्रीकृष्ण का कद आठ फीट बताया जाता है) कैसे रह सकता है? ऐसे ही एक अरब आकाश गंगाओं वाला ब्रह्माण्ड (प्रत्येक आकाश गंगा में एक अरब तारे होते हैं) आठ फीट वाले श्रीकृष्ण की देह से कैसे निकल सकता है? अतः सत्य यही है कि परमात्मा दिव्य प्रकाश रूप है। इसी कारण वह सर्व व्यापी व अनादि–अनंत है। मनुष्य की देह में जो ज्योति–कण रूप आत्मा है, उसका सर्व व्यापी दिव्य आलोक रूपी ब्रह्म में मिल जाना ही परम गति या मोक्ष है।

यह सारी बात अजीब सी लगती है। इसे अब वैज्ञानिक तरीके से समझो। संसार में बड़े से बड़े पहाड़ का भी सूक्ष्मतम रूप अणु – परमाणु है। एक परमाणु कितना छोटा होता है, अब यह देखो – एक मीटर के दस खरबवें अंश जितना छोटा। हम तो कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। ऐसे ही कणों से अरबों वर्ष में यह ब्रह्माण्ड बना था। ऐसे परमाणु में भी तीन उप कण होते हैं – प्रोटोन, न्यूट्रॉन व इलेक्ट्रॉन। जब दो प्रोटोन को आपस में टकराया गया तो कई सारे उन से भी छोटे कण पैदा हो गए। ये वस्तुतः प्रकाश कण ही होते हैं जो बेहद शक्तिशाली इलेक्ट्रॉनिक दूरबीन के बिना नहीं देखे जा सकते हैं। तो यह हमारी कल्पना से परे है कि ऐसे अणु–परमाणुओं से ब्रह्माण्ड की वस्तुएं कैसे बनी होंगी? यहाँ एक अन्य आश्चर्य यह कि ये असंख्य अणु–परमाणु, द्रव्यमान के बिना ठोस नहीं बन सकते हैं। यह द्रवयमान अदृश्य होता है। केवल भार के रूप में ही इसका एहसास होता है। प्रकृति का सारा कारोबार अपरा शक्ति से होता है। इसे नैसर्गिक नियम भी कह सकते हैं। ऐसे ही जीव जगत का सारा काम ऋत या चेतन नियम से चलता है। जीव जगत की सूक्ष्मतम इकाई शुक्राणु, वंशाणु आदि है। इसे भी आँखों से नहीं देखा जा सकता है। इससे भी अति सूक्ष्म चेतन कण है। यह परम चेतना से आता है और अंततः उसी में लीन हो जाता है। उधर समस्त प्रकृति भी अंततः बिखर कर परमाणु रूप हो जाती है। ये परमाणु ऊर्जा में लीन हो जाते हैं। ऊर्जा प्रकाश में समा जाती है। उधर समस्त जीवों के चेतन कण भी प्रकाश रूपी चेतना में 'लय' हो जाते हैं। यही

महाप्रलय है। पुनः सृष्टि के दौरान बद्ध जीव वापस जन्म लेते हैं। मुक्त जीवों का पुनर्जन्म नहीं होता है। गीता में श्रीकृष्ण भी यही कहते हैं कि मेरे भक्त को फिर से जन्म नहीं लेना पड़ता है।

फिर भी ब्रह्म का सत्य समझ में नहीं आता है। गीता में सातवें अध्याय के तीसरे श्लोक में श्रीकृष्ण कहते हैं कि हजारों मनुष्यों में कोई एक मुझे प्राप्त करने का यत्न करता है। उनमें भी कोई एक मुझे तत्त्व से यानी मेरे यथार्थ रूप को जानता है। अतः श्रीकृष्ण को समझने की जिद मत करो। वे जैसा कहते हैं वैसा कर लो। बस, इतने से ही उनके दर्शन हो जाएंगे, उनसे मुलाकात हो जाएगी।

ग्यारहवें अध्याय में उनके विश्व रूप के दर्शन करते हुए अर्जुन कहता है कि—आप ब्रह्मा के भी आदि कर्त्ता एवं अनंत हैं। आप जगत के नियंता, सत् असत् से परे, अक्षर ब्रह्म व सच्चिदानंद हैं। आप अदि देव, सनातन पुरुष, जगत के आश्रय व अनंतरूप हैं। आप से ही यह संसार परिपूर्ण है। आप वायु, यमराज, वरुण, अग्नि, चन्द्रमा, ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं (श्लोक सं0—37, 38, 39)। श्रीकृष्ण के ऐसे विश्वरूप के दर्शन करके अर्जुन डर गया—45वाँ श्लोक। तब उसने चतुर्भुज रूप के दर्शन देने की प्रार्थना की।.....तो ऐसे हैं श्रीकृष्ण! इनका ही वादा है कि तू स्थिर मन से मेरी भक्ति कर; मैं तुझे मिल जाऊँगा। तब जीव स्वयं ब्रह्म हो जाता है। समुद्र में मिलते ही बूंद भी समुद्र हो जाती है। फिर

उसे समुद्र से पृथक नहीं किया जा सकता है। ऐसे ही श्रीकृष्ण के परमधाम में उनसे मिल लेने के पश्चात् जीव वापस संसार में नहीं लौटता है।

तो, ये हैं श्रीकृष्ण जो गीता में – सभी को उनके पापों से मुक्त करने का वादा करते हैं; ज्ञान, कर्म व भक्ति योग के लिए प्रेरित करते हैं; अपनी शरण में आने के लिए समझाते हैं, अपना विश्व रूप दिखा कर यकीन दिलाते हैं कि वे ही परब्रह्म हैं। इसके बाद अपना चतुर्भुज रूप दिखा के सगुण भक्ति के लिए प्रेरित करते हैं। अब यह आपकी मर्जी कि आप उनके निराकार ब्रह्म रूप में मन लगाते हैं या साकार श्रीकृष्ण रूप में!

एक मत यह भी है कि देवकी – पुत्र कृष्ण ने स्वयं के मानवीय व्यक्तित्व का ईश्वरीय सीमा तक चरम विकास कर लिया था। इसलिए वे ही भगवान के रूप में पूजनीय हो गए। उनकी पूजा को ब्रह्म की भक्ति मान लिया गया। इसके पीछे यह विचार है कि ब्रह्म चेतना कभी भी शरीर धारण नहीं करती है। वह अवतार नहीं लेती है। विश्व व्यापी चेतना सदैव निराकार व अव्यक्त चेतना ही रहती है। अब होता यह है कि जन्म जन्मांतरो के उत्कृष्ट संस्कारों के फलस्वरूप कोई जीव पैदा हो कर मानवीय विकास की सर्वाच्चता तक पहुँच जाता है। तब वह सामान्य लोगों के लिए भगवान हो जाता है। यह मनुष्य का स्वभाव है। दुनिया में जहाँ कहीं भी ऐसे मानव हुए वे वहाँ–वहाँ ईश्वर की तरह पूजे

जाने लगे। अवतारी पुरुषों का यही सत्य है। इनकी पूर्ण विकसित ब्रह्माण्ड व्यापी चेतना लम्बे समय तक सक्रिय रहती है जिसके असर से किसी न किसी मनुष्य के माध्यम से विलक्षण कार्य होते रहते हैं। धरती पर कई जगह कॉस्मिक एनर्जी केंद्र तो हैं ही। यहाँ ब्रह्म चेतना अधिक मात्रा में संचित रहती है। अवतार माने जाने वाले स्त्री–पुरुष इन चेतन केंद्र से शक्ति ग्रहण करते हैं और 'सुपर मैन वाली आधुनिक सच्चाई से भी आगे निकल जाते हैं।.....तो फिर इनका नाम जपने से अन्य जीवों का कल्याण कैसे होता है? हमारे यहाँ शब्द को ब्रह्म माना गया है। नाम के प्रत्येक अक्षर में वह चेतना व्याप्त है। नाम को बार बार जपना चेतन बिंदुओं के परस्पर घर्षण जैसा होता है। घर्षण से अधिक ऊर्जा निकलती है। यही अतिरिक्त चेतन शक्ति हमारे काम कराती है और हम समझते हैं कि प्रभु ने हमारा कार्य कर दिया। जैसे सारा भौतिक संसार प्रकाश की किरणों व ध्वनि तरंगों का जंजाल है वैसे ही अध्यात्म में भी सारा खेल चेतन तरंगों का है। ये तरंगें मंत्र से, नाम से, भजन से, संकल्प से तथा धारणा, ध्यान आदि से निकलती रहती हैं। जब व्यष्टि चेतन तरंगें समष्टि चेतना से जुड़ जाती हैं तो मनुष्य में विलक्षण क्षमता आ जाती है। तब उसकी आत्मा ही गुरु या प्रभु के रूप में उसके जीवन का संचालन करने लगती है। वह सोचता है कि अब उस पर ईश्वर की कृपा बरसने लगी है।

कृष्ण महाकाल : दसवें अध्याय में कृष्ण ने कहा कि मैं महाकाल हूं। तो यहां देखें कि काल महाकाल क्या होता है? काल,

महाकाल, सृष्टि, प्रलय, अमरत्व एवं मोक्ष; ये सब आपस में जुड़े हुए हैं। ऐसा भी कहा जाता है कि गीतोपदेश के समय कृष्ण ने काल की गति रोक दी थी। क्या ऐसा सम्भव है?

काल इस सृष्टि की नियामक शक्ति है। यह अमूर्त है। काल सतत् प्रवाहमान ऊर्जा है। इसी से संसार में लगातार परिवर्तन होता रहता है। जन्म–मरण का चक्र भी इसी का खेल है। जीवों का संहार और द्रव्य पदार्थों का विनाश भी काल से ही होता है। इसे स्थूल काल कहते हैं। यह स्थूल प्रकृति की शक्ति है। प्रलय की अवस्था में यह सूक्ष्म प्रकृति में लीन हो जाता है। तब यह सूक्ष्म काल कहा जाता है। आगे महाप्रलय के समय प्रजापति ब्रह्मा सहित सम्पूर्ण सृष्टि एवं सूक्ष्म काल भी महाकाल या परब्रह्म में समा जाते हैं। इसका यह मतलब है कि तब सारी सृष्टि ऊर्जा में बदल जाती है। फिर यह ऊर्जा भी परम चेतना में लीन हो जाती है। इस तरह काल एवं महाकाल, ये दो शक्तियां हो गईं। निरंतर आवर्तन गति वाला यह काल, महाकाल में प्रवेश करते ही स्थिर हो जाता है। योगीजन उस उपाय को जानते हैं जिससे काल को स्थिर किया जा सकता है अर्थात् महाप्रलय से पहले ही वे इस आवर्तनशील काल शक्ति को स्थिर कर लेते हैं। काल शक्ति से छूट कर वे चैतन्य प्रकाश रूप परब्रह्म में प्रवेश कर जाते हैं। यहां विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि प्रजापति ब्रह्मा व अन्य सभी देवता भी काल के अधीन हैं – दिव्य सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर ये सब शांत हो जाते हैं। यह महाप्रलय काल होता है। देवर्षि

नारद के अनुसार काल का एक बटा एक अरब सेकण्ड वां अंश तो प्रजापति ब्रह्मा को भी ज्ञात नहीं होता है। .....यही महाकाल है जो फैल कर सारी सृष्टि को समेट लेता है।

योगी इस काल शक्ति से मुक्त रहते हैं। काल–संकर्षण शक्ति उनके वश में होती है। यही शक्ति काल गति का क्रम बदल देती है; काल प्रवाह को आगे पीछे कर देती है; काल परिधि का अतिक्रम करके ऊपर चली जाती है। इसी शक्ति के सहारे योगी कालजयी हो जाता है। काल परिधि पार करते ही तत्काल उसी क्षण अंतःकरण में आत्मप्रकाश व्याप्त हो जाता है। यही क्षण अनादि–अनंत कहा गया है। उसी पल काल की गति ठहर जाती है। श्रीकृष्ण ने गीता उपदेश के समय इसी संकर्षण शक्ति से काल चक्र को रोक दिया था। गति–धर्म वाला काल तो स्थूल व सीमित होता है किंतु महाकाल अव्यक्त एवं असीमित माना गया है। वह ब्रह्माणु में भी अनंत है। यही ब्रह्म है। ऐसी अवस्था को प्राप्त योगी भी ब्रह्म जैसा ही सर्व शक्तिमान हो जाता है। वह किसी भी घटना को घटित होने से रोक सकता है तथा न घटने वाली घटना को घटित करा सकता है।

उसके लिए भूत और भविष्य नहीं होता; सब कुछ वर्तमान है। यही कारण है कि वह किसी के भी भविष्य को पढ लेता है; पूर्व जन्म को जान लेता है तथा भावी घटनाओं में उलट फेर कर देता है।

यह एक लम्बी प्रक्रिया है–

इसमें अन्नमय कोष को आनंदमय कोष में बदलते हुए चित् व अचित् का एकत्व स्थापित करना होता है। जब अचित्, चित् में स्थिर हो जाता है तब कालजयी होने की अवस्था आती है। यह अमरत्व से भी बहुत ऊपर की अवस्था है। देवताओं की स्थिति तो देव एवं ब्रह्मा लोक तक ही है जो कि नाशवान है। योगी कालजयी होता है। ब्रह्म भी महाकाल होने के नाते कालजयी होता है। इसीलिए योगी को साक्षात् परमात्मा कहते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से हमारा शरीर पांच कोषों में बंटा हुआ है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय। सर्वप्रथम साधक को अन्नमय से प्राणमय कोष में जाना होता है। बार बार ऐसा करते हुए इन दोनों में एकत्व स्थापित करना होता है। परिणामस्वरूप अन्नमय कोष उसके लिए समाप्त हो जाता है। अब वह प्राणमय कोष के साथ मनोमय कोष में जाता है। पहले जैसी प्रक्रिया दोहराते हुए वह प्राणमय कोष को नष्ट करता है। तत्पश्चात मनोमय कोष से विज्ञानमय एवं आनंदमय कोष में जा कर इनसे भी मुक्त होता है। यहां वह पांचों कोषों से मुक्त हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि उसकी क्रमशः स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, मन, बुद्धि एवं अहंकार से आसक्ति हट जाती है। मन शांत और बुद्धि स्थिर हो जाती है। अहंकार (मैं देह हूं का भाव) चला

जाता है। तब उसका चित् में प्रवेश होता है। यहां वह देखता है कि कारण शरीर में अभी भी देह भाव बीज रूप से स्थित है। अतः वह चित् से अचित् में प्रवेश करता है। कई बार ऐसा करके दोनों में एकत्व स्थापित करके वह चित् के बीज रूप अस्तित्व को भी नष्ट करता है। बस, यहीं वह कालजयी हो जाता है। जब तक देह और कोषीय आवरणों का अस्तित्व है तब तक जीव काल के अधीन रहता है। इन सब से अनासक्त होते ही वह काल की पकड़ से छूट जाता है। ऐसे योगी के संकल्प मात्र से कोई–सा भी स्थान या समय (देश–काल) उसके समक्ष प्रकट हो जाता है। यही योगी का नित्यत्व और व्यापकत्व है। इसका मतलब यह कि योगी भी ब्रह्म की तरह नित्य एवं सर्व व्यापी हो जाता है।

हम अपने चारों तरफ जो कुछ भी स्थूल देखते हैं वह सूक्ष्म का ही व्यक्त रूप होता है। अतः सूक्ष्म पर नियंत्रण होते ही स्थूल जगत काबू में आ जाता है। देखिये! यह संसार पांच तत्त्वों से बना हुआ है। ये सूक्ष्म तत्व हैं–शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध। इनके स्थूल रूप हैं – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। इन स्थूल तत्वों से भौतिक जगत बना है। तो, जिसका इन सूक्ष्म तत्वों पर नियंत्रण हो जाता है, वह स्थूल संसार में मनमाने फेर बदल कर सकता है। यहां एक उदाहरण देखते हैं – नील मणि एक स्थूल पदार्थ है। इसका सूक्ष्म रूप जल है। पानी जब बर्फ के रूप में हजारों वर्ष तक पड़ा रहता है तो नीलमणि में बदल जाता है। यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। कालजयी योगी ऐसा अपनी

इच्छानुसार कर सकता है। हमें तो धरती दिखती है किंतु योगी को धरती–तत्त्व भी दिखता है; वैसे ही जैसे वैज्ञानिक को जल तत्व का ज्ञान होता है। जिसे तत्व ज्ञात होता है वह उस तात्विक वस्तु के फॉर्मेशन या संरचना को भी जानता है। इसलिए वह ऐसी वस्तु की संरचना या विरचना इच्छानुसार करने में समर्थ होता है।

अब यह समझें कि काल की सीमा में रहने या उससे परे चले जाने का मतलब क्या है? अथवा यह होता कैसे है? इसे श्वांस–प्रश्वांस की प्रक्रिया से समझते हैं : श्वांस भीतर लेना और उसे बाहर छोड़ना काल की सीमा के अंदर चलने वाला कार्य है। मतलब यह कि सांस लेना और सांस छोड़ना, ये दोनों ही काल से प्रभावित क्रियाएं हैं। श्वांस–प्रश्वांस के मध्य एक सेकण्ड के हजारवें अंश जितना समय ऐसा होता है जब वहां काल नहीं होता है अर्थात् वहां हम श्वसन प्रक्रिया से मुक्त होते हैं। इतनी सूक्ष्म समय–सीमा पर आश्चर्य मत कीजिए। मनुष्य को काल की सूक्ष्मतम इकाई भी ज्ञात है – 1/1000000000 सेकण्ड यानी नैनो सेकण्ड और 1/7000600705 सेकण्ड अर्थात फ्लिक सेकण्ड। खैर, श्वांस लेने एवं छोड़ने के बीच जो अ–श्वांस वाला शून्य होता है वह काल से परे की स्थिति है। योगी इसे पकड़ लेता है एवं उसी अवस्था में स्थिर हो जाता है। मन को वहां स्थित करते ही वह परम प्रकाश (ब्रह्म) से रौशन हो जाता है। इतना–सा अल्प क्षण ही काल से परे होने के परिणाम स्वरूप सत्य के दर्शन करा देता है। फिर देह पर्यंत भी योगी उसी अवस्था में रहता है। देह त्यागना

उसकी इच्छा पर निर्भर होता है। देह–त्याग के बाद वह महाकाल या ब्रह्म में लीन हो जाता है। सगुण भक्ति के अनुसार वह अपने आराध्य के उच्चतम लोक में उनके साथ रहने लगता है।

यहां तक तो स्थूल एवं सूक्ष्म काल की बात हुई। अब प्रश्न यह है कि काल अपने आप में क्या है? जैसे हवा क्या है? हवा विविध गैसों का निरंतर प्रवाहशील जीवन तत्व है जो जीवधारियों के लिए जरूरी है। हवा विभिन्न गैसों का प्रवाह है। ऐसे ही काल भी एक विशेष ऊर्जा तत्व का प्रवाह है। कौनसी ऊर्जा? ऐसी ऊर्जा जो भौतिक प्रकृति और जैव सृष्टि का नियमन करती है। नियमन का अर्थ है – जो अनावश्यक है उसका विनाश कर देना। इसके परिणाम स्वरूप नये सृजन के लिए जगह खाली हो जाती है। ब्रह्मा नाम की ऊर्जा तो नवसृजन करती है तथा काल नाम की ऊर्जा विनाश करती है। इस प्रकार सृष्टि चक्र चलता रहता है। तो ब्रह्मा 'सृजन ऊर्जा' का नाम है तथा काल 'संहार ऊर्जा' का नाम है। ये दोनों ऊर्जा तत्व प्रवाह शील रहते हैं। कब तक? महा–प्रलय तक। तब स्थूल काल एवं ब्रह्मा, दोनों ही शांत (अप्रभावी) हो जाते हैं। दोनों महाकाल में लीन हो जाते हैं। महाकाल अपने अधिष्ठान, परमब्रह्म में समा जाता है। एक निश्चित समय (दिव्य सौ वर्ष) के बाद सृष्टि का दौर पुनः आरम्भ होता है। परब्रह्म में लीन ये दोनों ऊर्जा धाराएं फिर से व्यक्त हो कर सृष्टि चक्र आरम्भ करती हैं। यों, सृजन–विनाश या जीवन–मृत्यु साथ–साथ चलते हैं। सांस भीतर ली तो जीवन तथा

बाहर छोड़ी तो मृत्यु अर्थात् बाहर छोड़ी गई सांस वापस नहीं आई तो मृत्यु। इन दोनों के मध्य में है–अमृत्यु। इसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। इस जीवन–मृत्यु से परे निकल जाना ही मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य है। ऐसा मनुष्य कालजयी की अवस्था में जीवित रहता है। फिर स्वेच्छा से देह छोड़ कर जन्म–मरण के चक्र से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है।

अब देखें कि काल से परे निकल जाने का क्या अर्थ है? इसे गुरूत्वाकर्षण शक्ति के उदाहरण से समझिए – विज्ञान के अनुसार किसी वस्तु को यदि 42,000 किमी प्रति घण्टे की रफ्तार से ऊपर फेंका जाए तो वह गुरुत्वबल से मुक्त हो जाती है। ऐसे ही योग शक्ति या अध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव मनुष्य को काल की शक्ति से मुक्त कर देता है। जो योगी पांचों स्थूल तत्वों पर नियंत्रण कर लेते हैं वे काल से ऊपर निकल जाते हैं। .....जिस तरह एण्टी मैटर भौतिक पदार्थों को नष्ट कर देता है, वैसे ही साधना से उत्पन्न चेतन शक्ति काल–ऊर्जा को निष्प्रभावी कर देती है। इस शक्ति से निरंतर प्रवाहित काल के क्रम को थोड़ी देर तक ठहराया भी जा सकता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश देते वक्त ऐसा ही किया था। जिस तरह आकाश में ओज़ोन गैस का एक सुरक्षा छाता बना हुआ है जो सूर्य प्रकाश से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों से हमारी सुरक्षा करता है वैसे ही श्रीकृष्ण ने कुरूक्षेत्र मैदान के चारों तरफ चेतन ऊर्जा का ऐसा घेरा बना दिया था। काल प्रवाह के लिए उसे पार करना असम्भव था।

अतः परिणाम स्वरूप वहां काल ठहर गया। श्रीकृष्ण, अर्जुन व भीष्म के अलावा सब भ्रमित थे। काल के ठहर जाने पर मनुष्य के चित्, मन, बुद्धि व अहंकार भी ठहर जाते हैं। यही कारण है कि गीता का उपदेश पूरा हो जाने के बाद दोनों पक्षों की सेना ऐसे सचेत हुई मानो एक पल के लिए झपकी आ गई हो।

ऐसी ही एक कथा रामायण काल में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला से संबंधित है – राम–रावण युद्ध के दौरान मेघनाथ के हाथों लक्ष्मण मूर्छित हो गए थे। उनकी जान बचाने के लिए संजीवनी बूटी की जरूरत थी। हनुमानजी इस बूटी का पहाड़ उठा कर आकाश मार्ग से जा रहे थे। वे अयोध्या के ऊपर से गुज़र रहे थे, तब उन्हें कोई राक्षस समझकर भरत ने तीर मारा। हनुमान नीचे गिर गए। तब पूरी बात स्पष्ट करते हुए वे बोले–यदि मैं सूर्योदय से पहले नहीं पहुंचा तो लक्ष्मण जीवित नहीं हो सकेंगे। यह सुन कर उर्मिला बोली – मैं सती स्त्री हूं; मैं सतीत्व की शक्ति से सूर्योदय को रोक दूंगी। सूर्य भी काल के अधीन है; इसलिए उसकी गति रोकने का मतलब काल की गति रोकना ही है। तो काल–संकर्षण की शक्ति योगी, ज्ञानी, भक्त व सती स्त्री के नियंत्रण में रहती है। ये संकल्प शक्ति से ऐसा कर सकते हैं। संकल्प की सिद्धि साधना से होती है। साधना की सिद्धि अभ्यास से सम्भव है। अभ्यास का मतलब चित्, मन, बुद्धि व अहंकार का निरोध होता है। इसका अर्थ है – भीतर की सकारात्मक ऊर्जा को एक ही चेतन बिंदु (आत्मा) पर स्थिर करना। यह कठिन काम है

लेकिन किसी संत की कृपा से सरल हो जाता है। संत शक्तिपात् के माध्यम से साधक की आंतरिक ऊर्जा – धारा को आज्ञा–चक्र पर स्थिर कर देता है। दोनों भौहों के मध्य स्थित अति सूक्ष्म प्रकाश–बिंदु के दर्शन कराते हुए चेतना को वहां ठहरा देने को शक्तिपात कहते हैं। यह सारा खेल ऊर्जा प्रवाह का ही है।

वस्तुतः सारा विश्व प्रवाहमय है – ध्वनि, प्रकाश, काल, परमाणु, पवन, श्वांस, गतिशील चांद – तारे, संपूर्ण ब्रह्माण्ड का निरंतर विस्तार आदि सब कुछ प्रवाह शील हैं। ऊपरी तौर पर स्थिर नज़र आने वाली वस्तुएं भी क्रमशः विनाश की तरफ बढ़ती जा रही हैं। जिस क्षण यह प्रवाह थम जाएगा, गति ठहर जाएगी; उसी क्षण महाप्रलय घटित होगी। इसीलिए कहा जाता है कि सारा संसार एक तरह का प्रवाह है। संस्कृत भाषा में एक उक्ति है – संसृति इति संसारः अर्थात् जो सरकता रहता है उसे संसार कहते हैं। जन्म के साथ ही जीवन सरकने लगता है। तभी से उसके साथ दूसरे छोर से मृत्यु भी सरकने लगती है। प्रकृति में द्रव्य एवं प्रतिद्रव्य, दोनों प्रवाहित रहते हैं। तो सर्वत्र द्वैत का प्रवाह है – सृजन–विनाश, द्रव्य–प्रतिद्रव्य, जीवन–मृत्यु, प्रकाश–अंधकार आदि। केवल चेतन तत्व अप्रवाहित या स्थिर है। सर्वव्यापी होने के कारण उसमें प्रवाह की सम्भावना ही नहीं रहती है।

काल और क्षण – जैसे पदार्थ का सूक्ष्मतम रूप परमाणु, कण का सूक्ष्मतम रूप गॉड पार्टिकल; ऐसे ही काल की सूक्ष्मतम

इकाई है – क्षण। इसमें केवल वर्तमान होता है; भूत और भविष्यकाल नहीं होते हैं। मनुष्य का अंतिम कर्म संस्कार ज्यों ही मिटता है त्योंही, उसी क्षण, आत्म ज्ञान हो जाता है। यह तत्क्षण ही होता है; ब्रह्म चेतना की सम्पूर्णता उसी क्षण आत्मा में उजागर हो जाती है। यह प्रकृति से परे है। काल प्रकृति की सीमा तक फैला हुआ है। सांस–प्रश्वांस के मध्य भी क्षण है जो योगियों के अलावा किसी की पकड़ में नहीं आता है। प्रकाश एक सेकण्ड में तीन लाख किमी तक फैल जाता है। यह हमारी अनुभूति से परे, केवल गणीतीय आकलन है। फिर भी सत्य है। यह विज्ञान का सच है। ऐसे ही क्षण 'योग विज्ञान' का सच है। हम नहीं जानते कि गॉड पार्टिकल्स का अध्ययन कर रहे वैज्ञानिकों ने 'हैड्रान कॉलाइडर' नाम की सुरंग में प्रकाश की गति से उड़ने वाले दो प्रोटॉन कणों को आपस में कैसे टकराया? फिर कैसे उसके परिणामों का अध्ययन किया? जबकि यह सत्य है। इसी तरह हम क्षण के बारे में भी नहीं जानते लेकिन वह भी सत्य है। योगी इसी क्षण में स्थिर हो जाता है। श्रीकृष्ण ने इसी क्षण को स्थिर करके अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। क्षण के आगे–पीछे कुछ नहीं होता है; इसे पकड़ने में असमर्थ हैं; इसलिए हमें क्षण सम्बंधी सत्य अविश्वसनीय लगता है। ऐसे थे श्रीकृष्ण। महाभारत के ग्रंथकार महर्षि वेद व्यास उन्हें सम्पूर्णता से जानते थे। इसीलिए लिखा कि यत्र योगेश्वरो कृष्णः।

4. अर्जुन कौन?

महर्षि लिखते हैं कि यत्र पार्थो धनुर्धरः यानी जिधर गाण्डीव धनुष को धारण करने वाला अर्जुन भी है। पहले कृष्ण पर जोर दिया। अब अर्जुन पर प्रभाव दे रहे हैं। अर्जुन, देवराज इंद्र का अंशावतार है। महर्षि नर का अवतार है। पाण्डु पुत्र है। अजेय धनुर्धर है। द्रोणाचार्य का शिष्य है। श्रीकृष्ण का सखा है। कृष्ण बलराम की बहिन सुभद्रा व याज्ञसेनी द्रोपदी का पति है। उसे द्रोणाचार्य से ब्रह्मास्त्र एवं भगवान शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त हुए थे। अब यह सारी बातें एक एक कर देखते हैं।

भागवत पुराण में एक कथा है – एक बार ब्रह्मा जी एवं भगवान महादेव में युद्ध हो गया। महादेव ने ब्रह्माजी का एक सिर काट दिया। क्रोधित ब्रह्माजी के स्वेद से तत्काल एक पुत्र पैदा हुआ जो स्वेदज कहलाया। वह एक हजार कवच के साथ उत्पन्न हुआ था। महादेव उस से युद्ध नहीं कर सके। भाग कर प्रभु विष्णु के पास गए। विष्णु ने अपने रक्त की बूंद से एक हजार हाथों वाला योद्धा उत्पन्न किया। उसका नाम रक्तजा था। अब स्वेदजा एवं रकतजा में युद्ध हुआ। एक ने दूसरे के 999 हाथ काट दिए। दूसरे ने अपने शत्रु के 999 कवच तोड़ दिए। फिर भी रक्तजा हारने लगा। यह देख कर विष्णु ने संधि करा दी। रक्तजा का दायित्व इंद्र को और स्वेदजा का भार सूर्य को सौंप दिया। ये द्वापर में क्रमशः अर्जुन – कर्ण हुए। रक्तजा ने इंद्र के

सामने प्रतिज्ञा की थी कि वह अगली बार स्वेदजा का वध करेगा। महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने कर्ण का वध किया – पराजित नहीं कर सका, वध किया। तो अर्जुन भगवान विष्णु का ही अंश रूप था।

दूसरी कथा – ब्रह्मा के पुत्र धर्म (पत्नी का नाम रुचि) के दो पुत्र थे – नर एवं नारायण। दोनों ने तत्कालीन बदरी वन में तपस्या की। वहीं केदारनाथ नाम से शिवलिंग स्थापित किया। ये ही नर नारायण द्वापर युग में अर्जुन – कृष्ण हुए। नर नारायण का समय आठ हजार वर्ष पूर्व का बताया जाता है। संजय इसीलिए अर्जुन को महात्मा कहता है।

भगवान शिव की तपस्या से अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। यह मन के संकल्प से, आंख के इशारे से एवं शब्द मात्र बोल कर चलाया जा सकता था। उक्त अस्त्र सम्पूर्ण विश्व को नष्ट कर सकता था। इस अस्त्र की कोई काट नहीं थी। उसने हिमालय क्षेत्र के इंद्रकोल पर्वत पर आश्रम बना कर देवराज इंद्र की तपस्या की। प्रसन्न हो कर इंद्र ने उसे दिव्यास्त्र दिये। अग्नि देव ने उसे गाण्डीव धनुष एवं अक्षय तुणीर दिया।

ऐसा कहा जाता है कि गाण्डीव धनुष का निर्माण कण्व ऋषि के तपोबल से संचित बाँस द्वारा किया गया था। कथा इस प्रकार है – कण्व ऋषि तपस्या में इतने लीन हो गए कि

उनके शरीर पर मिट्टी जम गई। उस मिट्टी में एक बाँस उग गया। ब्रह्माजी ने उस से तीन धनुष बनाए– गाण्डीव, शारंग एवं पिनाक। यही गाण्डीव अर्जुन को मिला। देवराज इंद्र ने अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किये। द्रोणचार्य ने अर्जुन को ब्रह्मशिर महाअस्त्र दिया। एक बार आचार्य गंगा में स्नान कर रहे थे। तभी उन्हें मगरमच्छ ने पकड़ लिया। आचार्य ने शिष्यों को पुकारा। तत्काल अर्जुन आगे बढ़ा। उसने पांच बाण चला कर मगर को मार दिया। खुश हो कर आचार्य बोले – मै तुम्हें विश्व का सर्व श्रेष्ठ धनुर्धर बनाऊंगा।

अर्जुन उर्वशी की कथा बताती है कि वह कितना संयमी था। कृष्ण ने अपनी बहिन सुभद्रा का विवाह उसके साथ किया। इस से भी सिद्ध होता है कि उस काल में वह योग्यतम था। उसकी पहुंच कृष्ण के शयनकक्ष तक थी। एक बार कृष्ण ने युधिष्ठिर को कहा कि अर्जुन के लिए मैं अपने शरीर का मांस भी काट कर दे सकता हूं। ऐसा था पार्थ। उसने अकेले ही खाण्डव वन के नागों को समाप्त किया, गंधर्व चित्रसेन को पराजित किया, विराट नगर में कौरवों की सेना को हराया एवं किरात वेशधारी भगवान शिव से युद्ध किया। वास्तव में वह अन्यतम योद्धा था।

धनुर्धर का मतलब ऊर्जावान भी होता है। उसमें योग, शौर्य, संयम आदि की ऊर्जा थी। कृष्ण ने उसकी ऊर्जा का उपयोग 'परित्राणाय साधुनां, विनाशाय च दुष्क्रताम्' के लिए किया।

उनके द्वारा धर्म संस्थापना का आधार अर्जुन ही था। कौरव पक्ष के महारथी भी मात्र उसी से डरते थे। दुर्योधन ने कर्ण को केवल अर्जुन की काट के रूप में तैयार किया था। उधर कृष्ण ने उसे अपने अवतारी उद्देश्य की पूर्ति के लिए माध्यम बनाया। सत्य ही वह अन्यतम था।

सत्य तो यह है – नौवें अध्याय के 29वें श्लोक में श्रीकृष्ण ने कहा है कि मैं अपने में प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। मैं सब प्राणियों में समभाव से व्याप्त हूं तो भी मेरा न कोई प्रिय है न ही अप्रिय। इस के उपरांत भी मैं अपने प्रिय भक्त के योगक्षेम की व्यवस्था करता हूं। उसका सारथी बन जाता हूं। उसे अपनी शरण में ले लेता हूं। इसी अध्याय के 28वें श्लोक में वे कहते हैं कि जो मनुष्य अपने सारे कर्म मुझे अर्पित कर देता है वह सन्यासी ही है। उसे मैं प्राप्त हो जाता हूं। .....ये सारी बातें अर्जुन पर चरितार्थ होती हैं। इसका मतलब यह कि श्रीकृष्ण के हृदय में अर्जुन है और अर्जुन के भीतर स्वयं कृष्ण प्रकट हैं। तो इस श्लोक का अर्थ हुआ कि जहां श्रीकृष्ण हैं वहीं सर्व कल्याण है। अर्जुन के धनुष में कृष्ण का ही शौर्य है। उसकी विजय में कृष्ण की ही विजय है।

जब तक कृष्ण उसमें प्रत्यक्ष नहीं हुए तब तक वह मोहग्रस्त रहा, आशंकित रहा, विचलित रहा। लेकिन जब कृष्ण ने उसमें खुद का विराट एवं चतुर्भुज रुप प्रत्यक्ष कर दिया तब वह स्थिर हो जाता है। इस आलोच्य श्लोक में स्थितप्रज्ञ अर्जुन के

लिए ही 'यथा पार्थो धनुर्धरः' कहा गया है। इसमें अब कृष्ण स्वयं हैं। जिस ने प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन कर लिए वह तद्मय हो गया। अब दोनों एक ही हैं। संसार के लिए भलें ही दो हों; दो दिखते हों किंतु सत्यमेव तो एक ही हैं। अद्वैत हैं। अद्वय हैं। यह बात सब भक्तों पर लागू होती है।

5. जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं!

इसका मतलब है – ज्ञान से संचालित शस्त्र। आत्मबोध से नियंत्रित कर्म। योग शक्ति से कर्म के सामर्थ्य की अंतिम सीमा तक विस्तार। विश्व कल्याण के लिए शक्ति का उपयोग। कृष्ण एक व्यक्ति नहीं समष्टि हैं। वे कर्म, कर्मफल एवं कर्म के संस्कारों से मुक्त हैं। अतः उनके द्वारा कर्म संचालन सर्व हिताय है। अर्जुन उनके कर्म का माध्यम है। न राग, न द्वेष। क्रोध, वैर, प्रतिशोध भी नहीं। केवल धर्म, सत्य, न्याय।

जहां जहां वे दोनो हैं, वहां ऐसा ही है। यही कारण है कि महाभारत को धर्मयुद्ध कहा गया। कृष्ण यानी आत्मज्ञान हमारे अंदर है। शक्ति हमारे भीतर है। धर्म अंदर है। सत्य, न्याय की सोच मनुष्य के हृदय में है। इसी के अनुसार बाहरी क्षेत्र में कर्म करो। अर्जुन कर्म की ऊर्जा है। यह भी अंदर से ही मिलती है। आत्मा हमारा ऊर्जा स्रोत है। काम, क्रोध, लोभ आदि से प्रेरित कर्म पाप हैं। कृष्णार्जुन की तरफ धर्म कर्म है। अंदर धर्म की सोच; बाहर धर्म के अनुसार कर्म। पापी को उसका पाप ही मारता है। प्रत्यक्ष में मारने वाला तो केवल निमित्त है। कृष्णार्जुन का यही मतलब है।

धर्म केवल पूजा पाठ तक सीमित नहीं है। उसमें 'परित्राणाय साधुनां, विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय' शामिल है। उसमें पूरा कृष्णावतार सम्मिलित है। वह इस से भी पहले रामावतार का पर्याय है। उधर राम लक्ष्मण हैं तो इधर कृष्ण अर्जुन हैं।

अर्जुन के रथ पर कृष्ण। अर्जुन के सारथी कृष्ण। कर्म के आगे ज्ञान। कर्म के आगे संयम, अनुशासन। कर्म के साथ नीति। कर्म के साथ आत्मबोध। कर्म की लगाम ज्ञान, संयम, कल्याण, धर्म एवं सत्य के हाथ में। कर्म जब प्रभु की शरण में हो जाता है तब विजय अवश्य होती है। सारथी सही राह देता है, बचाता है, संकट को खुद पर ले कर हटा देता है। कर्म को भटकने नहीं देता, बेलगाम नहीं होने देता। कर्म को किसी भी परिस्थिति में अपकर्म होने से बचाता है। कर्म यदि ज्ञान से अलग हो जाता है तो भटक जाता है। भटका हुआ कर्म विफल रह जाता है। जहां कृष्ण और अर्जुन हैं वहां भटकन नहीं है, विफलता नहीं है, अपकर्म नहीं है, असत्य और अधर्म भी नहीं है। इसीलिए वहां श्री, विजय, विभूति तथा नीति है। .....युद्ध से पहले श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा – भूल जा कि तू पाण्डु पुत्र अर्जुन है; तुझे द्रोपदी के अपमान का बदला लेना है। तुझे लाक्षागृह का प्रतिशोध नहीं लेना है। तू कौरवों को शत्रु भाव से मत मार। तू स्वयं के लिए युद्ध मत कर। तू मेरे लिए लड़। तू मेरा कर्म हो जा; अर्जुन बन कर मत लड़ ; मेरा, धर्म का, न्याय का आदेश बन कर युद्ध कर। अर्जुन तब व्यक्ति नहीं धर्म

था, कर्म था। उसमें कर्तव्य कर्म साकार हो गया। उस में श्रीकृष्ण के मंतव्य ने आकार ले लिया।

कर्म के मार्ग में आने वाले हर प्रकार के अवरोध की कृष्ण के पास काट थी। भीष्म के लिए शिखण्डी को आगे किया। द्रोणाचार्य के लिए धर्मराज युधिष्ठर को अर्धसत्य बोलने के लिए प्रेरित किया – अश्वत्थामा मारा गया (जोर से बोले), हाथी या मनुष्य ज्ञात नहीं (धीरे से बोले)। बाद वाला अंश द्रोणाचार्य ने नहीं सुना और अपने पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनते ही धनुष छोड़ कर बैठ गए। तभी धृष्टद्युम्न ने उनका वध कर दिया। अर्जुन की प्रतिज्ञा के अनुसार जयद्रथ नहीं मर रहा था। परिणाम स्वरूप अर्जुन को आत्मदाह करना पड़ता। तब कृष्ण ने योग बल से सूर्य को छिपा दिया। सूर्यास्त समझ कर जयद्रथ गुप्त स्थान से बाहर आ कर खुशी से चिल्लाया। तभी कृष्ण ने अपनी माया हटा ली। सब ने देखा कि सूर्य तो अभी अस्त नहीं हुआ है। अर्जुन ने शब्द भेदी बाण से जयद्रथ को मार दिया। कर्ण के कवच कुण्डल के लिए देवराज इंद्र को ब्राह्मण के वेश में भेज दिया। उसने दोनो वस्तुएं दान में मांग ली। कर्ण ने दे दी। बदले में इंद्र ने उसे एक अमोघ शक्ति दी। कर्ण ने उसी से अर्जुन को मारने का निश्चय किया। तब कृष्ण ने रात्रि युद्ध आरम्भ करा दिया और घटोत्कच को बुला लिया। वह रात्रि युद्ध में पारंगत था। कौरव सेना को बचाने के लिए कर्ण ने उस शक्ति से घटोत्कच को मार दिया; अर्जुन निरापद हो गया। ऐसे ही कुंती को कर्ण के पास भेज

कर अर्जुन के अलावा शेष चार पाण्डवों का जीवन बचा लिया अन्यथा कर्ण उन्हें तो मार ही देता। कृष्ण की यह सामरिक कूटनीति थी जिस के द्वारा सत्य के मार्ग में आने वाले अवरोधों को हटाया गया।

6. वहीं शोभा, कीर्ति, समृद्धि है!

वहीं यानी जहां कृष्ण – अर्जुन हैं। वहां आंतरिक व बाहरी विजय की शोभा है। महाभारत जैसे बड़े युद्ध में विजय कोई मामूली बात नहीं थी। किंतु कृष्ण की शक्ति और अर्जुन के कर्म से ऐसा सम्भव हो गया। विश्व के सब से बड़े उक्त युद्ध में विजय से पाण्डवों की कीर्ति बढ़ी, चारों तरफ उनके शौर्य की चर्चा होने लगी। अन्याय, अनाचार, शोषण आदि मिट जाने से हस्तिनापुर समृद्ध हुआ। परित्राणाय साधुनां से कीर्ति फैली। विनाशाय च दुष्कृतां से शांति हुई। धर्म संस्थापना से पाण्डवों के साम्राज्य की शोभा बढ़ी।

कृष्ण का गीतोपदेश आज सारे संसार में प्रसिद्ध है। अनेक देशों में गीता के अनुवाद वहां की भाषा में उपलब्ध हैं। जहां कृष्ण हैं वहां योग, ज्ञान, भक्ति, कल्याण, सत्य एवं न्याय है – यह सिद्ध हो गया। कृष्ण ब्रह्म हैं; अर्जुन देह है। कृष्ण परम शांति हैं; पार्थ उसकी व्यावहारिक विधि है। कृष्ण की ही एक विभूति है – श्री। दसवें अध्याय के 34वें श्लोक में वे कहते हैं कि मैं स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं। .....वे पार्थ को यह भी समझाते हैं कि जो मनुष्य कर्म से भागता है उस को अपयश मिलता है और कर्मण्य व्यक्ति को कीर्ति मिलती है। धर्मयुद्ध क्षत्रिय

की शोभा है। अधर्म उस की अपकीर्ति है। धर्म, न्याय एवं सत्य ही किसी राज्य की समृद्धि है।

7. विजय वहीं है

कृष्ण अंदर की विजय और अर्जुन बाहर की जीत का माध्यम। जीत तो कृष्ण यानी आत्मा की ही है। शरीर उसका माध्यम है। सत्य, न्याय, धर्म आदि आत्मा की ज्योति है। मनुष्य यां अर्जुन इनके प्रभुत्व स्थापन का माध्यम हैं।

गीता कहती है कि पहले स्वयं के अंदर जीतो। उसके बाद ही बाहर जय होगी। जो भीतर से हारा हुआ है वह बाहर नहीं जीत सकता। यही कारण है कि कृष्ण ने अर्जुन को आंतरिक विजय के साधन – ज्ञान, भक्ति एवं कर्म योग का उपदेश दिया। जो पार्थ भ्रमित था उसी ने अंत में कहा कि मैं अब स्थिर बुद्धि हूं, मेरा मोह जन्य अवसाद टूट चुका है। अब मैं युद्ध के लिए तैयार हूं। उसका कथन है कि हे अच्युत! आपकी कृपा से मैंने स्मृति लब्ध, प्राप्त, कर ली है। स्मृति यानी ज्ञान, आत्मबोध। अंदर का वैर भाव मिट गया, संशय दूर हो गया, कोई भय नहीं रहा। यह होती है आंतरिक विजय। उसके बाद धनुष उठाया। अंदर स्थितप्रज्ञ हो कर बाहर कर्म करना होता है। जो पाप की तरफ है, असत्य – अन्याय को बढ़ावा देने वाला है वह कभी शांत एवं स्थिर नहीं हो सकता है। इसीलिए तो सात सात महारथी एवं 11 अक्षोहिणी सेना के उपरांत भी दुर्योधन बेचैन था, आशंकित था, डरा हुआ था।

उसके भीतर अधर्म था। लोभ, मोह, क्रोध से आक्रांत था। उसका आंतरिक शुद्धिकरण नहीं हुआ था। परिणामस्वरूप सर्वनाश हुआ।

गीता कहती है कि जिधर योगेश्वर श्रीकृष्ण व स्थितप्रज्ञ ऊर्जावान अर्जुन है उधर ही विजय है। वहां पराजय सम्भव ही नहीं। जहां ज्ञान, भक्ति, निष्काम कर्मयोग, न्याय आदि हैं, विजय भी वहीं है। रावण महापंडित था, महावीर था किंतु योगी नहीं था, धर्मप्रवण नहीं था, सत्यनिष्ठ नहीं था; परिणामस्वरूप मिट गया। जरासंध अपनी सेना सहित अकेले कृष्ण से हार गया। कंस को उसी के राज्य में जा कर कृष्ण ने मार दिया। भगवान शंकर के वरदान से लगभग अजेय हो गए बाणासुर को मारा। यह धर्म की शक्ति थी। आत्मा का बल था। योग का सामर्थ्य था। महाभारत युद्ध के बाद बर्बरीक ने बताया कि उसने चारों तरफ सुदर्शन चक्र को चलते हुए देखा; उसी ने शत्रु सेना का संहार किया। श्रीकृष्ण परम थे – सामर्थ्य में, ज्ञान में, योग की उच्चतम अवस्था में। वे विराट थे – ब्रह्माण्ड की शक्ति उन में निहित थी। इसीलिये वेद व्यास ने संजय के मुँह से प्रस्तुत बात कही।

एक पौराणिक दृष्टांत देखते हैं – देवराज इंद्र का वतृासुर से युद्ध आरम्भ हुआ। देव सेना पराजित होने लगी। तब स्वयं इंद्र ने रण में जाने का निश्चय किया लेकिन मन में भय था। उनकी पत्नी शची आईं। पति की कलाई पर रक्षासूत्र बांधते हुए बोली – इस रक्षासूत्र में मेरे सत् की शक्ति अनुस्यूत है। युद्ध

में यह आपकी रक्षा करेगा। देवराज जीत गए। सत् की शक्ति ऐसी प्रबल होती है। कृष्ण तो स्वयं सच्चिदानंद थे। कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण व कर्ण; ये सब कृष्ण से हारे, अर्जुन से नहीं। इनको कृष्ण की युक्ति ने मारा, अर्जुन की वीरता ने नहीं। जरासंध को भी कृष्ण के चातुर्य ने मारा, भीम के बल ने नहीं। वृहदारण्यक उपनिषद का ऋषि कहता है – असतो मा सद्गमय; मुझे असत्य से सत्य की तरफ ले चलो; असत् या नश्वर से सत् अथवा शाश्वत की ओर बढ़ाओ। तमसो मा ज्यातिर्गमय – अज्ञान से ज्ञान की तरफ ले चलो। मृत्योर्मा अमृतंगमय – मृत्यु से अमरता की तरफ चलाओ। जिसके अंदर यह साक्षात् हो गया उसी की सदैव विजय होती है। तमस को तो मिटना ही है। असत् को नष्ट होना ही है।

गांधारी शिवभक्त थी। यदि दुर्योधन को 'विजयी भव' कह देती तो बड़ी मुश्किल हो जाती। उसने ऐसा नहीं कहा – जानती थी कि असत् नहीं जीतना चाहिये। इसलिए अपने ही पुत्र को विजय का वरदान नहीं दिया। लेकिन सौ पुत्रों की माता ने अवतारी पुरुष कृष्ण को शाप दे दिया। वह जानती थी कि कृष्ण साक्षात भगवान हैं फिर भी शाप दे दिया। कृष्ण उस माता का हृदय नहीं जीत सके जिसके सौ पुत्र युद्ध में मारे गए। गांधारी जानती थी कि कृष्ण के बिना ऐसा असम्भव था। उसे ज्ञात था कि भीष्म, द्रोण एवं कर्ण के रहते हुए दुर्योधन को अन्य कोई नहीं मार सकता था। सत्य की जीत चाहने वाली ने सत्य के स्वरूप श्रीकृष्ण को शाप दे दिया। कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा – माता आप का

शाप भी मुझे स्वीकार है। अब तो मुझे द्वारका लौट जाने की आज्ञा दे दें। बस, उसी क्षण माता गांधारी भी हार गई। सुबकते हुए बोली कि कृष्ण तुम आखिर किस मिट्टी से बने हुए हो? मैंने शाप दिया, वह भी पूरे यदुवंश के नाश का; और तुम हँस रहे हो! यहां कृष्ण का धैर्य जीत गया; गांधारी की शोकाकुल उत्तेजना हार गई। कृष्ण बोले – माता यह होनी है जो आप के मुँह से निकल गई। यहां आते समय मैं जानता था कि आप मुझे शाप देंगी। फिर भी तुम आए – गांधारी ने रोते रोते साश्चर्य कहा। कृष्ण पुनः हँसते हुए बोले – होनी तो मेरे यहां नहीं आने से भी नहीं टलती। लौटने से पहले आपकी आज्ञा भी जरूरी थी। कृष्ण लौट गए। जो शत्रु की शत्रुता की भी जय कर ले उसे विजय कहते हैं। .....उन्होंने भीष्म को अंतिम क्षणों में विष्णु रूप के दर्शन दे कर मुक्त कर दिया। कर्ण का दाह संस्कार स्वयं के हाथ से कर के उसे अमर कर किया। लीला संवरण से पहले अर्जुन की परम शक्ति वापस ले ली; उस में सामर्थ्य का अहंकार न आ जाए, इसलिए। द्रोपदी के क्षमा भाव को इतना बढ़ा दिया कि उसने अपने पांचों पुत्रों के हत्यारे अश्वत्थामा को भी माफ कर दिया – शत्रु को क्षमा भी विजय है। कृष्ण अद्‌भुत थे, विलक्षण थे, परम थे।

गंगा पुत्र भीष्म को शिखण्डी की ओट में रह कर मारने से अर्जुन को गंगा का शाप लगा कि वह स्वयं के ही पुत्र के द्वारा मारा जाएगा। कृष्ण यह जानते थे। यहां भी उनकी परम शक्ति ने काम किया – युद्ध के बाद युधिष्ठर ने अश्वमेध यज्ञ किया। सेना

सहित अर्जुन मणिपुर पहुंचा। वहां उसकी पत्नी चित्रांगदा के पिता चित्रवाहन का राज्य था। अर्जुन – चित्रांगदा के पुत्र का नाम वभ्रुवाहन था। अर्जुन के साथ उसका युद्ध हुआ; कारण कि उसने कुरु साम्राज्य की आधीनता स्वीकार नहीं की। युद्ध में अर्जुन मारा गया। जब समाचार महल में पहुंचा तो हाहाकार मच गया। तब उलूपि ने संजीवनी बूटी से उसे वापस जीवित किया। उलूपि भी अर्जुन की पत्नी थी – वनवास काल के दौरान उसने उक्त नागकन्या से गंधर्व विवाह किया था। कृष्ण के रहते हुए ऐसा हो गया! अर्जुन को शक्ति का अहंकार आ गया था। वह कृष्णभक्त अर्जुन को भूल कर गाण्डीवधारी और युद्ध विजेता अर्जुन हो गया। इसी अहंकार को तोड़ने के लिए कृष्ण ने वैसा होने दिया। प्रभु के बिना भक्त की जय कैसे सम्भव है। केवल श्रीकृष्ण जयते है, अन्य कोई नहीं।

8. वहीं विभूति है

– गीता में श्रीकृष्ण की 82 विभूतियों का उल्लेख है। यह दसवें अध्याय में है। इस अध्याय के अंत में कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि जो जो भी ऐश्वर्य युक्त, कांति युक्त व शक्ति युक्त वस्तु है उसे तू मेरे तेज से ही उत्पन्न जान। मैं इस सम्पूर्ण जगत को अपनी योगमाया के एक अंश मात्र से धारण किये हुए हूं। यहां विभूति का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। विभूति यानी ब्रह्म के तेज से उत्पन्न ऐश्वर्य, कांति, शक्ति आदि जो अवतारी पुरुष में निहित रहती हैं।

शास्त्रों में यह भी उल्लेख मिलता है कि कृष्ण 16 कलाधारी अवतार थे। जैसे चंद्रमा अपनी 16 कलाओं से पूर्णता प्राप्त करता है वैसे ही मनुष्य भी 16 कलाओं को धारण कर के पूर्ण हो जाता है। कला का अर्थ है ज्ञान अथवा बोध की अवस्थाएं। जो मनुष्य मन से अलग रह कर बोध करने में सक्षम होता है वही इन कलाओं में गति करता है। चंद्र कला का मतलब है चंद्रमा की विविध अवस्थाएं। पूर्णिमा को वह पूर्णता प्राप्त करता है।

चंद्रमा की कलाएँ – अमृत, मनदा, पुष्प, पुष्टि, तुष्टि, द्युति, शाशनी, चंद्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्ण, पूर्णामृता। इसी को प्रतिपदा, दूज, एकादशी, पूर्णिमा आदि भी कहा जाता है।

अन्य – कलाओं के अन्य नाम भी मिलते हैं– अन्नमया, प्राणमया, मनोमया, विज्ञानमया, आनंदमया, अतिशायिनी, विपरिनाभिमी, संक्रमिनी, प्रभवी, कुंथिनी, विकासिनी, मर्यादिनी, सन्हालादिनी, आल्हादिनी, परिपूर्ण, स्वरूपवस्थित।

अन्य – श्री, भू, कांति, इला, लीला, कीर्ति, विद्या, विमला, उत्कर्षिनी, ज्ञान, क्रिया, योग, प्रहवि, सत्य, ईशना, अनुग्रह।

गीता में सोलह कलाओं की 19 अवस्थाओं का उल्लेख है – अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल पक्ष की 15 एवं एक उत्तरायण। ये तत्व ज्ञान से युक्त योगी की अवस्थाएं हैं जिनको प्रकाश से रूपायित किया गया है। इनके अर्थ प्रस्तुत हैं – 1. बुद्धि का निश्चयात्मक हो जाना 2. अनेक जन्मों की सुधि आने लगती है 3. चित्त वृत्ति नष्ट हो जाती है 4. अहंकार नष्ट हो जाता है 5. संकल्प विकल्प समाप्त हो जाते हैं यानी स्वयं के स्वरूप का बोध होने लगता है 6. आकाश तत्व में पूर्ण नियंत्रण हो जाता है; कहा हुआ प्रत्येक शब्द सत्य होता है 7. वायु तत्व पर पूर्ण नियंत्रण हो जाता है, स्पर्श मात्र से रोग मुक्त कर देता है 8. अग्नि तत्व पर नियंत्रण ; दृष्टि मात्र से कल्याण करने की शक्ति आ जाती है 9. जल तत्व पर नियंत्रण – जल स्थान दे देता है 10. पृथ्वी तत्व पर नियंत्रण – देह से सुगंध आने लगती है। नींद, भूख प्यास नहीं लगती है 11. जन्म, मृत्यु स्थिति अपने अधीन हो जाती है 12. समस्त भूतों से एकरूपता, सब पर नियंत्रण। जड़ चेतन इच्छानुसार कार्य करते

हैं 13. समय पर नियंत्रण– देह वृद्धि रुक जाती है या अपनी इच्छा से होती है 14. सर्व व्यापी हो जाता ह ै– एक साथ अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है, पूर्णता का अनुभव, लोक कल्याण के लिए संकल्प धारण कर सकता है 15. कारण का भी कारण हो जाता है। यह अव्यक्त अवस्था है 16. उत्तरायण कला– अपनी इच्छानुसार समस्त दिव्यता के साथ अवतार रूप में जन्म लेता है, जैसे राम कृष्ण। श्रीकृष्ण में ये सारी विशेषताएं देखी गई हैं। यह कृष्ण की अवतारी अवस्था है। इसमें अर्जुन शामिल नहीं है। वह तो मनुष्य के कर्म का सामर्थ्य है।

कलाएं और विभूतियां ईश्वर से संबंधित होती हैं। तो 'तत्र विभूति' का तात्पर्य श्रीकृष्ण है। उनकी 16 कलाओं वाली पूर्णता में उनकी सारी विभूतियां भी समाविष्ट हो गई हैं। जहां पूर्णता है वहां सब कुछ है – श्री, विजय, नीति आदि। इस सामर्थ्य के व्यवहार का माध्यम पार्थ है। और कोई अन्य भी हो सकता था। प्रभु की इच्छा कि उन्होंने अर्जुन को चुना। चक्रव्यूह में कृष्ण ने कौरव पक्ष के सातों महारथियों पर अभिमन्यु की श्रेष्ठता स्थापित कर दी थी। युद्ध के अंत में उन्होंनें पार्थ को बताया कि कर्ण का शौर्य कैसा था – तुम्हारे रथ की ध्वजा पर हनुमान विराजमान थे और मैं (त्रिलोकीनाथ) सारथी बन कर बैठा था। फिर भी कर्ण के बाण से तुम्हारा रथ तीन कदम पीछे सरक जाता था! यदि हनुमान एवं मैं नहीं होते तो यह रथ अंतरिक्ष में पता नहीं कहां गिरता! उन्होंने दुःशासन को कहा कि तुम्हारे पाप ने तुम्हें मारा है। तुम्हारे

शौर्य से तुम सब को मार सकते थे लेकिन पापाचार ने उस शौर्य को ग्रहण लगा दिया। तात्पर्य यही कि कृष्ण ने जिसे माध्यम बना लिया वही सर्वश्रेष्ठ वीर हो गया।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने गीता पर अपने भाष्य में विभूति का अर्थ कल्याण, विश्व कल्याण बताया है। इसका अर्थ यह कि ईश्वरीय ऐश्वर्य या शक्ति का उपयोग सदैव जन कल्याण में ही होता है। कृष्ण ने कहा – परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृतामं; धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे अर्थात सज्जनों के कष्ट मिटाने, दुष्टों का नाश करने तथा धर्म की पुनर्स्थापना के लिए परमात्मा हर युग में अवतार लेते हैं।

तो अर्थ हुआ कि जहां श्रीकृष्ण हैं वहीं विभूतियां हैं। उनकी विभूतियां अनंत हैं। जो अपनी योगमाया के एक अंश मात्र से संसार को धारण किये हुए हैं उनकी विभूतियां असीम ही हैं। वे नित्य हैं। जब जब भी धरती पर कोई अवतार होता है, ये विभूतियां कलाओं के अनुपात से उस अवतार में अवतरण करती हैं।

9. वहीं अटल नीति है

ध्रुव यानी अटल, शाश्वत, सत्य, अकलुष, निर्दोष। सार्वकालिक नीति। सार्वजनीन नीति। क्या होती है ऐसी नीति? यह होती है – सब सुखी रहें, सब का कल्याण हो, सत्य की जीत हो, अन्याय का नाश हो। धर्म की रक्षा हो। स्त्रियों एवं बालकों को संरक्षण मिले। वर्ण व्यवस्था का निर्वाह हो। दैवी सम्पदा बढ़े यानी सद्‌गुण पनपें। सब अपने अपने कर्तव्य कर्म करें।

जब कोई राजा या शासन ऐसा नहीं होने देता तो 'विनाशाय च दुष्कृतामं' का जयघोष होता है। कोई राम या कृष्ण अवतरित होता है। कोई अर्जुन गाण्डीव धनुष उठाता है। पाप के, अनीति के विरुद्ध महायुद्ध होता है।

सत्यमेव जयते, अटल है। तमसो मा ज्योतिर्गमय – प्रार्थना है। विनाशाय च दुष्कृतां– नीतिगत प्रतिज्ञा है।

अब यही नीति है क्या? कि जहां कृष्ण रूपी ज्ञान है और अर्जुन रूपी शौर्य है वहां युद्ध में विजय निश्चित है। जहां योगेश्वर कृष्ण हैं वहां सत्य है, न्याय है, धर्म है, और आत्मज्ञान है। जहां कृष्ण हैं वहां प्रेम है, आनंद है। कृष्ण के साथ ही राजधर्म है, युद्धधर्म है।

कृष्ण के पास पक्षपात नहीं है – कंस को मारा, शिशुपाल को मारा, कर्ण को मरने दिया, क्योंकि ये सब अधर्म की तरफ थे। यदुवंश का नाश होने दिया क्योंकि वहां स्वेच्छाचार फैल गया था। अटल नीति ऐसी ही कठोर होती है।

रामायण से एक दृष्टांत – राम रावण युद्ध में मेघनाद की मृत्यु हुई। उस की पत्नी सुलोचना प्रभु राम के पास गई और अपने पति का सिर मांगा। वहां लक्ष्मण भी खड़े थे। उन्हें संबोधित करते हुए वह बोली कि यह मत समझना कि आप ने मेरे पति को मारा। वे तो अजेय थे। .....लेकिन अधर्म की तरफ होने के कारण उनका वध सम्भव हुआ। आप के पास सती उर्मिला के सत् की शक्ति है तो मेरे सत् का सामर्थ्य मेरे पति के साथ था। किंतु माता सीता का अपहरण अधर्म था। मेरे पति अधर्मी दशानन की तरफ से युद्ध कर रहे थे। .....प्रभु ने सुलोचना के पतिव्रत धर्म की प्रशंसा की। उसे मेघनाद का सिर दे दिया। सुलोचना ने सती धर्म का पालन किया। इस कथा में भी नीति अनीति की बात है। नीति की जय बताई गई है। जहां अधर्म है वहां अनीति है। जहां अनीति है वहां अधर्म है। ब्राह्मण के वेश में अकेली स्त्री सीता का अपहरण अनीति थी। रावण को फिर भी सीता को लौटा कर प्राण रक्षा का पूरा अवसर दिया गया। यह राम के द्वारा निर्वाह की गई नीति थी। कृष्ण का शांतिदूत के रूप में जाना भी नीति थी।

10. ऐसा मेरा मत है

कौन है यह बात कहने वाला? संजय? हाँ, मुँह तो उसी का है लेकिन बात महर्षि वेदव्यास की है। इतनी बड़ी बात संजय कैसे कहता? मतिर्मम – मेरा मत है। आप मानो, यह जरूरी नहीं। विश्व स्वीकार करे, ऐसी बाध्यता नहीं। सर्वमान्य सत्य होने का दावा नहीं, केवल खुद की राय बता रहे हैं। उन्होंने श्रीकृष्ण का ब्रह्म रूप देखा था, इसलिए यह बात कही है। भगवान पर कोई आरोप नहीं लगाया जा सकता। हम पूरी बात या घटना का रहस्य समझ नहीं पाते हैं इस कारण अनेक प्रश्नों से विचलित हो जाते हैं। लेकिन महर्षि तो स्वयं त्रिकालदर्शी थे। कृष्ण के परम रूप एवं शक्ति से अवगत थे। युद्ध का सारा घटनाक्रम देख चुके थे। फिर भी ऐसी बात कह गये तो जरूर अतिशय महत्व की है। युद्ध में लाखों योद्धा थे, महारथी थे। आग्नेयास्त्र थे। दिव्यास्त्र थे। ब्रह्मास्त्र व पाशुपतास्त्र थे। .....और 'परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम' की बहुत बड़ी चुनौती थी। समर में विकट कूटनीति का उपयोग अनिवार्य था। इसलिए हम सामान्य जन को अपनी अल्प बुद्धि से कृष्ण के विरुद्ध प्रश्न नहीं उठाने चाहिए।

स्मृति – विस्मृति

(अठारहवें अध्याय के 73वें श्लोक की व्याख्या)

बात आरम्भ करें

यह विश्व विख्यात ग्रंथ अर्जुन के मोह से शुरू होता है और उसके मोह – मुक्त होने पर समाप्त हो जाता है। उस की विस्मृति वाली अवस्था से आरम्भ होता है तथा खुद के स्वरूप की स्मृति होने पर यह उपदेश पूरा हो जाता है। विस्मृति में मनुष्य को केवल इसी जन्म की बात याद रहती है। वह वर्तमान जन्म के रिश्ते नातों व मित्रों – शत्रुओं में उलझा रहता है। उसे विगत जन्म तो याद ही नहीं है! आगे का उसे ज्ञान नहीं है। वह देह तक ही सीमित रहता है; आत्मा की तो उसे अनुभूति ही नहीं है। इस जन्म के नामधारी जीव (स्वयं) को ही वह सम्पूर्ण मान कर चलता है। इसी कारण काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, तृष्णा आदि में फँसा हुआ रहता है। उसे अपनी निज सनातन सत्ता की स्मृति नहीं है। प्रत्येक पिछले जन्म में वह अलग अलग नामधारी जीव था, यह उसे ज्ञात नहीं है। इसी को विस्मृति कहते हैं।

स्मृति का मतलब है स्वयं के सनातन आत्मरूप का ज्ञान। अहं ब्रह्मास्मि का ज्ञान। अयम् आत्मा ब्रह्म; इस का ज्ञान। 'कोऽहं, सोऽहं, ना देहम्' की निरंतर अनुभूति। जब यह स्मृति हो जाती है तब मोह आदि विकार छूट जाते हैं। कर्तापन का अभिमान एवं भोक्ता वाली आसक्ति नष्ट हो जाती है।

तो शुरू में अर्जुन भी विस्मृत अवस्था में था। इस कारण मोहग्रस्त हो गया। युद्ध के मैदान में विपक्ष की तरफ अपने भाई बंधुओं एवं पितामह भीष्म, गुरु द्रोण आदि को देख कर वह कहता है कि ये सब तो मेरे अपने प्रिय और आदरणीय हैं, मैं इन्हें कैसे मारूँ? ऐसा कह कर वह धनुष रख देता है और युद्ध करने से मना कर देता है। यही उसका मोह है। चूँकि उक्त मोह उसे धर्म एवं सत्य की विजय से रोक रहा था, इसलिए अर्जुन को उससे मुक्त करना जरूरी था। यदि वह दुष्टता के पर्याय हो गए कौरवों को नहीं मारता तो श्रीकृष्ण के अवतार लेने का उद्देश्य पूरा नहीं होता.....अन्याय व अत्याचार अधिक बढ़ जाते। अतः अर्जुन को मोह से मुक्त करना अनिवार्य था। उसे यह याद दिलाना जरूरी था कि तुम शरीर नहीं, आत्मा हो; और आत्मा का कोई रिश्तेदार, मित्र, शत्रु नहीं होता है। श्रीकृष्ण ने यही किया। उन्होंने पार्थ को देह, आत्मा, जन्म–मृत्यु, पुनर्जन्म, धर्म–अधर्म, सत्य, ज्ञान–भक्ति–कर्मयोग, मुक्ति, बंधन व काम–क्रोध–मद–मोह–लोभ का बोध कराया.....उसे देह की नश्वरता व आत्मा की शाश्वत ज्योति के दर्शन कराए एवं अपने प्रबोधन से उसके मोह को दूर किया.....आत्मसत्य की स्मृति उपलब्ध कराई। तब अठारहवें अध्याय के 73वें श्लोक में अर्जुन ने कहा कि– हे अच्युत (आत्म रूप में स्थिर)! अब मेरा मोह नष्ट हो गया है.....मुझे 'स्मृति' उपलब्ध हो गई है.....मेरा अज्ञान दूर हो गया है.....मेरी बुद्धि स्थिर हो गई है। अब मैं आपका आदेश मानते हुए अपना कर्त्तव्य कर्म करने के लिए

तैयार हूँ। तत्पश्चात उसने शंख फूँका और तब महाभारत का युद्ध आरम्भ हुआ।

इस तरह गीता का मुख्य उद्देश्य तो हमें हमारी वह सनातन स्मृति उपलब्ध कराना है जो हमें मोहजनित अवसाद से मुक्त कर दे क्योंकि वह हमारे कर्त्तव्य मार्ग में बाधा बन जाता है। इस मोह के कई कारण हैं जो अज्ञानवश हमें घेर लेते हैं। यह मोह इतना प्रबल होता है कि अर्जुन जैसे वीर, योगी व भगवान श्रीकृष्ण के सखा को भी चपेट में ले लेता है। .....यह मोह का विकार हम सब पर लागू होता है – पारिवारिक मोह के अलावा धन, पद, प्रतिष्ठा, रूप, सौंदर्य आदि का मोह हमें विचलित करता ही रहता है। परिणाम स्वरूप हम यां तो अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पाते हैं अथवा गलत राह पर भटक जाते हैं। परिणाम होता है – दुःख, क्लेश, असंतोष, अशांति, अपराध, कानून का फंदा आदि। यदि गीता का सार तत्व याद रखते हुए हम जीवन निर्वाह करें तो इन सारी परेशानियों से बच सकते हैं।

अठारहवें अध्याय के 73वें श्लोक की व्याख्या के माध्यम से इस पुस्तक में यही समझाया गया है।

श्लोक का सामान्य अर्थ

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।।
स्थितोऽस्मि गत सन्देहः करिष्ये वचनं तव।।

शब्दार्थ – नष्टो मोहः = मेरा मोह नष्ट हो गया है। स्मृतिर्लब्धा = स्मृति आ गई है, लब्ध यानी प्राप्त हो गई है। मै देह नहीं, आत्मा हूं, यह ज्ञात हो गया है। त्वत् = आपके। प्रसाद = कृपा से। आत्मय = मुझे। अच्युत = श्रीकृष्ण। स्थितो स्मि = मै कर्तव्य भाव में स्थिर हो गया हूं। गत = चला गया है। सन्देहः = संशय। करिष्ये = करूंगा। वचनं तवं = आप के आदेश का पालन।

सामान्य अर्थ – हे अच्युत (किसी भी स्थिति में जो विचलित नहीं होता है)! आप की कृपा से अब अपने बंधु बांधवों एवं गुरुजन के प्रति मेरा मोह नष्ट हो गया है। मुझे ज्ञात हो गया है कि मैं और ये सब मरणशील शरीर नहीं, शाश्वत आत्मा हैं। अब धर्म–अधर्म, पाप–पुण्य आदि से संबंधित मेरे सारे संशय मिट गए हैं। इसलिए मेरी बुद्धि स्थिर हो गई है। अब मैं आप के आदेश का पालन करूंगा यानी धर्मयुद्ध वाले कर्तव्य का निर्वाह करूंगा।

विस्तृत व्याख्या

1. मेरा मोह नष्ट हो गया है!

सब से पहले तो यह समझें कि मोह कभी भी नष्ट नहीं होता। यह विकार तो जन्म जात है.....मृत्यु के बाद भी संचित संस्कारों के साथ अगले जन्म में जाता है। होता यह है कि हम अपने संकल्प से, साधना से, संयम से या इन सब के परिणाम स्वरूप उस से अप्रभावी हो जाते हैं। अंधेरा तो है, किंतु आपने लाइट जला ली.....तो आप अंधेरे से अप्रभावी हो गए। ऐसे ही योगी या सिद्ध संत मोह से अप्रभावी हो जाते हैं। फिर कब किस दशा में वह पुनः मन पर चोट कर दे, कुछ पता नहीं। अभिमन्यु की मृत्यु पर यही अर्जुन मोहासक्त हो कर रोने लगा, कृष्ण पर नाराज हुआ। वह उस आघात से गीता वाला ज्ञान भूल गया। तो मोह नष्ट नहीं हुआ था। नष्ट ही हो जाता तो वापस नहीं उठता। हाँ, जब तक हम मोह से अप्रभावी हैं तब तक गलत काम नहीं करेंगे। इतना ही प्र्याप्त है। लम्बे समय तक ऐसी अवस्था में रहने के फलस्वरूप यह स्वभाव बन जाता है। 'अमोह' आदत बन जाती है। अवतारी पुरुष इसके उदाहरण हैं।

और एक बात.....सबसे अधिक मुश्किल है, स्वयं के प्रति मोह से मुक्त होना। कोई मनुष्य मरना नहीं चाहता.....सब के सब दुःखों से दूर रहना चाहते हैं.....आर्थिक तंगी से बचना चाहते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति मान प्रतिष्ठा चाहता है। ब्रह्मज्ञान के अभिलाषी राजा जनक को अष्टावक्र ने इसीलिए कहा कि तू अपने आप से मुक्त हो जा.....स्वयं के प्रति मोह को छोड़.....भूल जा कि तू राजा जनक है। खुद के प्रति मोह ही मनुष्य से पाप कराता है। यही मोह बंधन में बांधता है। 'मैं, मेरा, मुझसे आदि में ही सारे विकार निहित हैं – मेरा पुत्र, मोह.....मेरा धन, लोभ.....मेरी प्रतिष्ठा, मद या अहंकार.....मेरी स्त्री, काम.....मेरी बात नहीं मानी, क्रोध। अतः यदि खुद से मोह न रखें तो सारे झंझट समाप्त.....लेकिन यह असम्भव जितना कठिन है। यही कारण है कि गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि अर्जुन! तू स्वयं के देह बोध को भूल जा.....केवल इतना याद रख कि तू मात्र कर्त्तव्य है; मान सम्मान से मुक्त रहते हुए अपने दायित्व का निर्वाह कर। इसके बिना न तो मृत्यु का भय जाएगा और न ही प्रतिशोध का विकार छूटेगा। सत्य व न्याय की विजय के लिए ऐसी अवस्था में स्थित होना जरूरी है।

अतः पार्थ जब कहता है कि मेरा मोह नष्ट हो गया तो उसका मतलब है – (1) मैं अपनी देह के मोह से मुक्त हो गया हूँ। युद्ध में मर जाऊंगा, इसका डर नहीं है। क्यों? क्योंकि मैं जान गया हूँ कि दैहिक मृत्यु तो नये वस्त्र धारण करने जैसी बात है। मनुष्य की आत्मा तो अमर होती है (2) भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि को मैं कैसे मारूंगा! यह द्वंद्व भी दूर हो गया है.....ये सब तो वैसे ही मरणशील हैं.....अपनी मौत मरेंगे ही...प्रत्येक मनुष्य स्वयं की मौत ही मरता है, कोई अन्य उसे नहीं मारता, हाँ.....निमित्त जरूर

कोई बन सकता है (3) जाने कितने योद्धाओं को मारने का पाप मुझे लगेगा, यह भय भी अब नहीं है...क्योंकि मैं तो निमित्त मात्र हूँ, मारने वाला तो काल है, मैं देहधारी अर्जुन नहीं। मैं एक धर्मनिष्ठ योद्धा की तरह लड़ूंगा। मरने वालों को काल ही मेरे प्रहारों के सामने लाएगा (4) मैं व्यक्तिगत उपलब्धि के लिए युद्ध नहीं लड़ रहा हूँ.....मुझे तो धर्म, सत्य व न्याय की पुनर्स्थापना के लिए धर्मयुद्ध का माध्यम बनना है। श्रीकृष्ण ने जिस उद्देश्य के लिए अवतार लिया उसे पूरा करने में 'साधन' बनना मेरा धर्म है (5) रिश्तों नातों का मोह भी अब नहीं है.....मेरे पहले भी कई जन्म हो चुके हैं और आगे भी न जाने कितने और होंगे! जब तक मैं अपने संचित संस्कारों से मुक्त न हो जाऊँ तब तक पुनर्जन्म होते ही रहेंगे। हर जन्म में कोई अन्य लोग संबंधी बन जाते हैं.....तो फिर इस जन्म के रिश्तों के लिए मोह क्यों? मैं किसी का पुत्र, पति, भाई, मित्र, शत्रु आदि नहीं हूँ। मैं केवल जीवात्मा हूँ जिसे इस जन्म के लिए नियत किये गए कर्म करने हैं.....मैं उन कर्मों से भाग नहीं सकता.....मेरे संस्कार मुझसे वे कर्म करा ही लेंगे – यह ज्ञान मुझे हो गया है (6) मुझे निष्काम भाव से युद्ध धर्म को पूरा करना है.....जीवात्मा को और नये बंधनों में नहीं फँसाना है क्योंकि मेरा लक्ष्य अपनी आत्मा को जीव भाव से मुक्त करके उसे परम चेतना में पुनः लय करना है। देह के प्रति थोड़ा सा भी मोह और अहम् भाव से किये गए कर्म जीवात्मा के लिए नये बंधनों का कारण बनता है (7) सारे काम केवल श्रीकृष्ण को अर्पित करते हुए करने हैं; मैं न तो कर्ता हूँ, न ही भोक्ता.....मात्र साक्षी हूँ। अपना

कर्तव्य साक्षी भाव से पूरा करना है (8) इसीलिए, हे गोविंद! अब आप जो कहेंगे, मैं वही करूंगा।

किसी भी कार्य में पूरी सफलता तब प्राप्त होती है जब हम स्वयं को पूर्णतः उस कर्म में लगा देते हैं। यह तभी सम्भव है जब अन्य सब तरफ से ध्यान हटा कर हम लक्ष्य के प्रति एकाग्रचित्त रहेंगे। मोह से छूटे बगैर ऐसी एकाग्रता सम्भव नहीं। इसलिए अर्जुन ने कहा कि अब आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है। अब मैं आपके वचन के अनुसार कर्तव्य कर्म करूंगा।

हम सब के साथ भी ऐसा ही होता है। सारा जीवन बीत जाने पर अंतिम क्षणों में भी हम से मोह नहीं छूटता है – संतान का क्या होगा.....मेरे बाद पति या पत्नी कैसे रहेंगे.....मकान जमीन जायदाद को कौन सम्हालेगा आदि आदि। चक्रवर्ती सम्राट भरत बड़ा ज्ञानी था। आखिरी वक्त एक मृग शावक में मोह पड़ गया..... फलस्वरूप अगला जन्म हिरण की योनि में लेना पड़ा। विश्व विजय के लिए घर से निकले सम्राट सिकंदर ने हजारों माओं के बेटों को मरवा दिया लेकिन स्वयं मरने से पहले बोला कि मेरी सारी दौलत ले लो.....बदले में मुझे इतना सा समय दे दो कि मैं घर पहुँच कर अपनी माँ से मिल सकूँ। राजा दशरथ तो पुत्र के मोह में मर ही गए। तो, बहुत कठिन है मोह से मुक्त होना। फिर भी प्रयास करते रहना चाहिए। इसके उपरांत भी गीता हमें मोह से मुक्ति की राह

दिखाती है। भीष्म पितामह पर अर्जुन पूरी शक्ति से बाण नहीं मार रहा था। उनके प्रति आदर व मोह के कारण ही ऐसा हो रहा था। कृष्ण इसे देख रहे थे। उन्होंने पुनः प्रयास किया– भीष्म को मारने के लिए रथ का डण्डा उठा कर उनकी तरफ दौड़े। तत्काल ही अर्जुन ने उन्हें रोका। वह सारी बात समझ गया। तब उसने भीष्म पर संहारक प्रहार किये।.....फिर युद्ध की समाप्ति के बाद पुनः स्वयं की वीरता से मोहित हुआ, सोचा कि उसने ही संग्राम जीता है। तब बर्बरीक के सिर ने कहा कि उसने तो चारों तरफ श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र को चलते हुए देखा। मतलब यह कि मोह बीच बीच में मौका मिलते ही उठता रहता था। फिर भी इस श्लोक के अनुसार उसका मोह छूट गया...लेकिन कैसे! श्रीकृष्ण की कृपा से। उपदेश से तो नहीं छूटा – युद्ध के बाद उसने श्रीकृष्ण को कहा कि गीता वाला उपदेश एक बार फिर से सुनाएँ.....क्योंकि मैं पहले वाले को तो भूल गया हूँ। वासुदेव बहुत नाराज़ हुए.....बोले कि उस समय तो मैं योग की उच्चतम अवस्था में था.....अब वह ज्ञान मेरे पास नहीं है.....फिर भी घोर आंगीरस ऋषि ने मुझे जो ब्रह्मज्ञान दिया था वही तुम्हें सुनाता हूँ।.....तो उपदेश से नहीं, कृष्ण की कृपा से ही वह मोह मुक्त हुआ था। उस ने कहा भी कि हे अच्युत! आप की कृपा से ऐसा हुआ है।

किंतु हम क्या करें! अभ्यास..... |.....देखिए, योगी तो निष्काम कर्मयोग से मोह मुक्त होता है.....ज्ञानी अपने ज्ञान से कि मैं देह नहीं आत्मा हूँ और भक्त अपनी दीनता के सहारे इस विकार

से छूटता है। साधक को गुरु कृपा पार लगाती है। बचे हुए लोग शास्त्र के अनुसार नियमित प्रयास करें – सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह आदि को सदैव याद रख कर कर्तव्य भाव से कर्म करने का कठोर अभ्यास करें। निरंतर के प्रयास का असर होता ही है। अपने लोगों द्वारा लगातार की जाने वाली उपेक्षा, शारीरिक रोग, आर्थिक तंगी, और एक उम्र के बाद व्यर्थ हो जाने का बोध – ये सब मिल कर भी मनुष्य के मोह को तोड़ देते हैं। इतना तोड़ देते हैं कि जीवित रहने की इच्छा ही समाप्त हो जाती है। तब भी बचा हुआ मोह संस्कार के रूप में अगले जन्म तक पहुँच जाता है। चलो यह तो कोई खास बात नहीं, संचित संस्कार तो कटते से कटेंगे.....हम तो अभी इस जीवन की बात कर रहे हैं.....वह इतनी सी है कि यथासम्भव मोह से मुक्त रहें जिस के फलस्वरूप अपने कर्तव्य कर्म कर सकें।

गुरुदेव बताते थे कि समाधि की अवस्था में रहते हुए ही मोह के प्रभाव से बचा जा सकता है.....ज्योंही नीचे उतरे, मोह कभी भी असर कर सकता है। किंतु ये बातें बहुत उच्च स्तर की हैं जो योगियों के लिए अनिवार्य हैं। हमारे लिए तो इतना ही पर्याप्त है कि मोह में फँस कर कोई अपराध नहीं करें.....यानी इस विकार से इतना तो अप्रभावी रहें। केवल बातें करने या संतो के किस्से सुनने सुनाने से कुछ नहीं होगा। स्वयं का संकल्प ही काम करेगा। अर्जुन भी कहता है – करिष्ये वचनं तवं.....अर्थात् मैं अब आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूंगा। पहले कहा कि राज्य नहीं चाहिए, मैं

युद्ध नहीं लड़ूंगा। भगवान ने चेताया कि उठ! कायरता छोड़, और अपना कर्म कर.....यानी युद्ध कर। तब उसने कृष्ण की बात नहीं मानी। प्रभु ने उसे कर्म, भक्ति और ज्ञान का उपदेश दिया.....अपने विराट एवं चतुर्भुज रूप के दर्शन कराए.....उसके बाद भी बहुत कुछ समझाया। तब वह बोला कि मेरा मोह नष्ट हो गया है। कौनसा मोह? जिसका वर्णन पहले अध्याय के अंत एवं दूसरे अध्याय के शुरू में मिलता है।

आत्मा पर 'जीव भाव' लिपट गया तो आत्मा जीवित देह की लीलाओं में मग्न हो गई.....स्वयं की वास्तविकता को भूल गई। उसे खुद की वास्तविकता पुनः याद दिलाने वाला ग्रंथ है गीता..... उसे देह के मोह से मुक्त कराने वाला शास्त्र है गीता।

गीता समझाती है कि तुम कर्ता नहीं हो; मात्र निमित्त हो, माध्यम हो। माध्यम में न मोह, न अहंकार आ सकता है। साधन में मोह कैसे आएगा? गर्व कैसे होगा? यह तो कर्ता भाव से आता है। कृष्ण ने इसीलिए कहा कि अर्जुन! तू निमित्त मात्र रह जा। .....कर्ता ईश्वर; हम तो निमित्त हैं – ऐसे हो जाओ।

2. स्मृति वापस पा ली है!

स्मृति यानी ज्ञान। विस्मृति; अज्ञान। स्मृति; आत्मबोध। अविस्मृति; देहबोध। .....शब्द है 'स्मृतिर्लब्धा' – स्मृति प्राप्त हो गई है। तो पहले कहां खो गई थी? .....मैं विस्मृति में जी रहा था। यह विस्मृति क्या है? यही कि मैं देह हूं। स्मृति यानी मैं आत्मा हूं। आत्मा और उसकी विभूतियों को भूल गया था.....खुद की आत्मा या आत्मरूप जो विस्मृत हो गया था, उसकी वापस स्मृति अब हो गई है।.....किसी मनुष्य के सिर में चोट लगी..... उसकी याद्दाश्त चली गई। वह अपने आप को व सारे संबंधियों को भूल गया था। जीवन बेकार हो गया। कई साल बाद वापस वैसी ही चोट लगी.....याद फिर से लौट आई। जो जीवन व्यर्थ हो गया था, वह फिर से ठीक हो गया। तो मोहग्रस्त अर्जुन का अस्तित्व व्यर्थ हो गया.....उसकी उपयोगिता युद्ध करने व जीतने में थी। लेकिन कह दिया कि युद्ध नहीं लडूंगा। वह अनुपयोगी हो गया। वह आत्मस्वरूप को भूल गया। याद ही नहीं रहा कि वह शाश्वत आत्मा है, नश्वर देह नही.....और आत्मा के कोई रिश्ते नहीं होते.....ये दैहिक संबंध इसी जन्म तक सीमित हैं। लेकिन श्रीकृष्ण की कृपा से उसे आत्मबोध हो गया अर्थात् स्मृति लब्ध हो गई। अपनी वास्तविकता को वह जान गया। फलस्वरूप मोह नष्ट हो गया। अब उसे आत्म–स्मृति हो गई – वह जान गया कि अनेक जन्मों से उसकी जीवात्मा जन्म–मृत्यु की यात्रा कर रही है। समझ गया कि मोहजन्य कामनाएँ ही उसकी जीवात्मा के बार बार जन्म

का कारण रही हैं। उसे अनुभव हो गया कि भगवान की शरण में रहते हुए निष्कामभाव से कर्तव्य कर्म करने से ही पुनर्जन्म का चक्कर छूटेगा। उसके इतने सारे जन्म हो चुके हैं!.....यह देख कर वह उकता गया। दैहिक जन्मों का मोह टूट गया.....रिश्तों का भ्रम समझ में आ गया – ये सब न तो इस जन्म से पहले मेरे कुछ थे.....और न ही इसके बाद वाले जन्मों में कुछ रहेंगे.....तब इनके प्रति आसक्ति क्यों? युद्ध नहीं होता तो भी ये सब अपनी मौत मर जाते.....मैं भी ऐसे ही मर जाऊंगा.....। जोरदार चोट लगी। मोहजनित अज्ञान का कोहरा साफ हुआ। आत्मविश्वास एवं कर्तव्य बोध ने सिर उठाया। तब बोला कि मैं अब 'अपने स्वरूप' में स्थिर हो गया हूँ। अब आप जो कहेंगे वही करूंगा।

महात्मा अष्टावक्र ने राजा जनक के साथ ऐसा ही किया.....उन्हें उनके पूर्व जन्म दिखा दिए। तब जनक बोले कि मैं यह सब देख कर घबरा गया हूँ.....पिछले जन्मों में मैंने क्या क्या गलत किया है! सारे जन्म बेकार गँवा दिए.....वे जन्म जो मुझे आत्मोद्धार के लिए मिले थे! इस सब का कारण कामनाएँ हैं..... और कामनाओं का कारण मन है। अतः मैं यह मन ही आपको (अष्टावक्र को) दान करता हूँ। वे योगी तो थे ही.....अतः संकल्प करके मन दे दिया। तब अष्टावक्र ने उन्हें ब्रह्म का ज्ञान कराया। अब वे 'विदेह' हो गए। ऐसी होती है स्मृति पा लेने के बाद वाली स्थिति।

एक अन्य दृष्टांत – गौतम बुद्ध ने यशोधरा को उसके पूर्व जन्म के विषय में बताया। वह एक किन्नरी थी। उस का पति भी किन्नर था। अचानक ही पति की मृत्यु हो गई। उस ने अपने शील के बल पर पति को पुनर्जीवित करा लिया। यह प्रसंग सुनते ही यशोधरा को स्मृति हो गई। वह महल को छोड़ कर भिक्खुणी, भिक्षुणी, हो गई। अपने स्वरूप की स्मृति ही मनुष्य में विराग को विकसित करती है। उसे निष्काम करती है।

श्रीकृष्ण से अर्जुन पचासों प्रश्न करता है। श्रीकृष्ण द्वारा प्रत्येक उत्तर उसके मोह पर रद्दा मारता है। मोह की डोर बहुत मोटी है। उसे काटने में गीता के अठारह अध्यायों का उपदेश पूरा हो जाता है। साथ ही साथ उसके भीतर कृष्ण की कृपा भी प्रवाहित होती रहती है। जाने कितने जन्मों से संचित हो रहा था उक्त मोह जिसे काटने में वासुदेव को भी इतना श्रम करना पड़ा।

सामान्य मनुष्य को भी भगवान के भरोसे तो होना ही पड़ेगा। हमारे भीतर भी जाने कितने जन्मों के ऐसे संस्कार संचित हैं! जो ज्ञात नहीं हैं। उनका मुकाबला भगवान के भरोसे करने में निश्चय ही हमारा भला है। हमें रोज़ एक प्रार्थना करनी है – हे प्रभो! हमारे अंदर इतना मोह मत पनपने देना कि जो हमसे गलत काम या अपराध करा दे। इससे क्या होगा? होगा यह कि एक सात्विक चेतना धीरे धीरे तुम्हारे भीतर विकसित हो कर जीवन का संचालन करने लगेगी। तब मोह ही नहीं, बल्कि अन्य विकार भी

कमजोर पड़ते जाएंगे। प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रार्थना के साथ धैर्य भी रखना होगा। दुःख को दूर करने के लिए गलत काम करने का मतलब है कि स्वयं को कष्ट देने वाला एक और नया बीज (भोग संस्कार) बो दिया। आपके चारों ओर ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल जाएंगे। गीता का पठन पाठन भी करते रहिए। जो लोग रोज़ गीता का एक अध्याय पढ़ते हैं उन्हें ऐसा आभास होने लगता है कि श्रीकृष्ण उनके साथ हैं। पहले तो यह भाव की तरह रहता है.....लेकिन बाद में सच हो जाता है।

अब सनातन स्मृति। सनातन यानी सदैव, हरदम। जो सदैव है अर्थात् आत्मा। देह तो मरणधर्मा है। जीवात्मा बार बार देह धारण करती है। जीव की उपाधि वाली आत्मा ही जीवात्मा है। .....इसे समझो – एक मनुष्य पढ़ लिख कर प्रोफेसर बन गया। अब 'प्रोफेसर' उस की उपाधि हो गई। वह मनुष्य की जगह प्रोफेसर की तरह आचार व्यवहार करने लगा। ऐसे ही आत्मा के स्थान पर जीवात्मा वाला भाव आ गया। इसी से मुक्त होना है। जैन संत देह त्यागने से पहले उपाधि, आचार्य आदि, भी छोड़ देते हैं। निरुपाधि हो जाते हैं। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि तो देह के साथ लगते हैं। आत्मा के आगे पीछे कुछ नहीं होता है। तो सब उपाधियों से मुक्ति हो जाना ही स्मृति लब्ध होना है। जीव भाव से मुक्ति ही मोक्ष है। यह आत्मा सदैव ही मुक्त है। अजर, अमर है। यह ज्ञान हो जाना ही स्मृति है। योगी ज्ञानी होते हैं। वे हरदम आत्मबोध में रहते हैं। सामान्य मनुष्य विस्मृति में रहता है। खुद को

देह मान कर वैसे ही कर्म करता रहता है – भोगवादी कर्म, बंधनकारी कर्म, पुनर्जन्म कराने वाले कर्म, भोग संस्कारों का संचय करने वाले कर्म। स्मृति हो जाना यानी स्वयं के स्वरूप का बोध हो जाना। तब योग युक्त कर्म होते हैं। निष्काम कर्म होते हैं। अबंधनकारी कर्म होते हैं। तो मैं आत्मा हूं; यह सनातन भाव है। मैं शरीर हूं; सामयिक, अस्थाई भाव है। हमें स्थाई भाव का बोध करना है। गीता यही कराती है। अर्जुन के साथ ऐसा ही हुआ। तब वह बोला कि मुझे स्मृति हो गई है।

प्रत्येक पुरुष में उसके क्रोमोसोम पर एक वंशाणु रहता है। यह वंशाणु उस के गोत्रपुरुष का होता है। यह हजारों साल तक पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। उस में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उक्त वंशाणु में उस गोत्रपुरुष से संबंधित सनातन स्मृति का माइक्रो डॉट होता है। योग साधना के जरिए इसे जाना जा सकता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया से भी ऐसा सम्भव है। हमारे जन्म जात स्वभाव में इसकी भी भूमिका होती है। एक वंश समूह से दूसरे वंश समूह में विवाह संबंध से इस में बदलाव आ सकता है।

3. आपकी कृपा से!

मोह कैसे दूर हुआ? अर्जुन कहता है कि आपकी कृपा से.....अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से। जैसे विद्युत के तारों में करंट प्रवाहित होता है तब 'लाइट' जलती है.....यह करंट दिखता नहीं है। ऐसे ही संत महात्मा या अवतारी पुरुष, प्रिय जन पर शक्तिपात करते हैं या उनमें शक्ति प्रवाहित करते हैं जो दिखती नहीं है किंतु असर करती है। उसके परिणामस्वरूप कार्य सरल हो जाता है। यही कृपा कही जाती है। अर्जुन इसे स्वीकार करता है। यह नहीं कहता कि आपका उपदेश सुन कर मैं अपने मोह से मुक्त हो गया हूं.....और ऐसा था भी नहीं। प्रभु ने उसे अपने विराट रूप के दर्शन कराए थे.....यह उनकी अनन्य कृपा थी। पार्थ इसे स्वीकार करता है। इसीलिए कहता है कि – त्वत्प्रसरदान्मयाच्युत! .....हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है।

वैसे भी अर्जुन कोई मामूली आदमी नहीं था। देवराज इंद्र का पुत्र था। अवतारी कृष्ण की बुआ का बेटा था। कृष्ण की सखी द्रौपदी का पति था। द्रोणाचार्य जैसे गुरु के चरणों में बैठ कर उसने अध्ययन किया था, भीष्म पितामह जैसे तपस्वी की छत्र छाया में वयस्क हुआ था.....फिर भी अंदर का मोह गया नहीं। जब गया तो श्रीकृष्ण की कृपा से ही ऐसा हुआ। यह बात एकदम सत्य है कि महात्माओं की नज़र से या उनके सोचने मात्र से सामने बैठे हुए 'प्रिय जन' का कल्याण हो जाता है। मनुष्य को तो यही लगता

है कि उसके प्रयास से ही सारा कार्य हुआ है.....क्योंकि महात्मा अपनी दया को जताते नहीं हैं। फिर भी श्रद्धालु समझ जाता है। आप ऐसा नहीं मानते तो एक सवाल का जवाब दें कि भगवान के मंदिर में क्यों जाते हो? अभी तो न कृष्ण हैं, न ही राम! फिर भी अपना मनोरथ पूरा कराने के लिए वहाँ जाते हो? काम हो जाने पर दूसरों को भी ऐसा करने के लिए कहते हो। कोई तो बात है ना! खुद को बुद्धिजीवी साबित करने के लिए ऐसी बातों को काटते हो लेकिन स्वयं कष्ट में पड़ते हो तो पूजा स्थलों पर ही जाते हो। ज्यादातर लोग ऐसे ही हैं।

तो बात प्रभु की कृपा से संबंधित है। आपका भाव जितना प्रबल है, 'कृपा शक्ति' भी उसी अनुपात में काम करती है। उदाहरण – आपका कोई काम रामसहाय नाम के अधिकारी ने अटका रखा है। अब आप अपने आराध्य से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! उस अफसर से मेरा काम करा दें। ज्योंही उक्त प्रार्थना प्रबल होगी त्योंही चेतन तरंग का रूप ले कर उस रामसहाय के मस्तिष्क से टकराएगी। उसके भीतर आपका काम कर देने की पॉज़िटिव सोच पैदा हो जाएगी। ऐसी होती है कृपा की प्रक्रिया। जबकि अर्जुन के सामने तो श्रीकृष्ण साक्षात् थे एवं उसे समझा रहे थे। अरे! अवतार या संत का तो सामने खड़े रहना ही कार्यसिद्धि का आधार बन जाता है। वे जो कुछ बोलते हैं, वह तो केवल अपनी कृपा को छिपाए रखने के लिए ऐसा करते हैं। अर्जुन समझता

था.....इसलिए कहा कि आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और सनातन समृति भी पुनः मिल गई है।

कृष्ण के लिए वह 'अच्युत' शब्द का प्रयोग करता है। इसके मतलब हैं.....च्युत न होने वाला। किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होने वाला। जिसे कोई भी उसके मर्यादित आचरण से हटा या भटका नहीं सके। आप अनुकूल परिस्थितियों में तो संयत रहते हैं किंतु प्रतिकूल दशा में धैर्य खो बैठते हो.....तो आप सामान्य ही हुए न! कृष्ण ने तो आजीवन विपरीत परिस्थितियों को सहन किया एवं अपना कर्तव्य भी पूरा किया – कंस के कैदखाने में जन्मे, गोकुल में ग्वालों के बीच बचपन बीता, फिर उन सब को व राधा एवं गोपियों को भी छोड़ कर मथुरा जाना पड़ा..... वहाँ अपने ही सगे मामा कंस को मारा, फिर पढ़ने के लिए संदीपन ऋषि के आश्रम में गए तो उनके पुत्र को राक्षसों से छुड़ा कर लाए। इसके पश्चात् जरासंध के सत्रह आक्रमणों से मथुरा को बचाया.....मथुरावासियों को ले कर वहीं से पलायन किया और नया नगर द्वारिका बसाया। महाभारत के युद्ध में पाण्डवों का विजय पथ प्रशस्त किया, गांधारी का शाप स्वीकार किया और अपने वंश का नाश अपनी ही आँखों से देखा। कृष्ण के सामने ही बड़े भाई बलराम ने जलसमाधि ली। अंत में स्वयं ने अकेले जंगल में बहेलिये के बाण से मृत्यु को स्वीकार किया। राधा से वापस नहीं मिल सके! इस से अधिक विपरीत परिस्थितियाँ और क्या होंगी! फिर भी हर समय शांत रहे.....युद्ध में भी क्रोध नहीं करते थे। वे

वास्तव में अच्युत थे। ऐसे अवतारी या ऐसी ही स्थिति में रहने वाले महात्मा के हृदय से ही 'कृपा' की धारा निकलती है। किसी के भी प्रति इनका शत्रु या मित्रभाव नहीं होता.....ये असंलग्न रहते हैं किंतु सत्य अथवा न्याय की जीत चाहते हैं। इसीलिए सत्यवादियों या न्यायवादियों को ही इनकी कृपा मिलती है। आज तो साधू जैसा दिखने वाले हर किसी को कृपानिधान मान लिया जाता है।

अब समझें कि ये महात्मागण करते क्या हैं! .....एक उदाहरण – आपके घर में अचानक ही बिजली बंद हो गई। अब आप तो कुछ जानते नहीं। मिस्त्री को बुलाया। उसने विद्युत प्रवाह को बाधित करने वाला अवरोध ठीक कर दिया..... बिजली पुनः चालू हो गई। संत भी ऐसा ही करते हैं.....आपमें एक शुद्ध चेतन प्रवाह की निरंतरता है। पूर्व संस्कारों के कारण कभी उक्त प्रवाह में बाधा आ जाती है। तब आप भ्रमित होने लगते हैं.....गलत काम करने लगते हैं...अचानक ही संकट में पड़ जाते हैं। यदि ऐसे में आप किसी संत की शरण में पहुँच गए तो वह उस मिस्त्री के जैसा ही काम करता है.....बाधक संस्कारों को हटा देता है.....फलस्वरूप चेतन प्रवाह की निरंतरता वापस कायम हो जाती है। चेतन प्रवाह की निरंतरता अंतःकरण को अनुशासित रखती है। उसके कारण मन, बुद्धि की स्थिरता में मदद मिलती है; अहंकार आदि संयत रहते हैं।

पूर्व जन्मों के संचित प्रतिकूल संस्कार उक्त धारा में ब्लॉकेज पैदा कर देते हैं। तब मन, बुद्धि आदि बहकने लगते हैं और हमारे कष्टों के कारण बन जाते हैं। संत महात्मा ऐसे संस्कारों का त्वरित भुगतान कराते हुए ऐसी बाधा को हटा देते हैं। फिर सब कुछ ठीक हो जाता है। इसी को हम उनकी कृपा मानते हुए भगवान की तरह उनकी पूजा करने लगते हैं।.....तुमने किसी से झगड़ा किया। पुलिस पकड़ कर ले गई। शहर का एक प्रतिष्ठित आदमी थाने जाकर बोला कि यह भला मनुष्य है.....जाने कैसे गलती कर बैठा! आगे ऐसा नहीं करेगा.....इसे छोड़ दीजिए। पुलिस ने आपको मुक्त कर दिया। संत भी आपके लिए प्रभु से ऐसी ही सिफारिश करते हुए बचा लेता है। उधर थानेदार ने छोड़ा.....इधर भगवान ने माफ किया। इसीलिए गीता में कृष्ण कहते हैं कि तू सारे झंझट छोड़ कर मेरी शरण में आ जा। मैं तेरे सारे पाप माफ कर दूंगा.....मैं सच कहता हूँ.....मेरा विश्वास कर। तो संत तुम्हारे लिए जिससे प्रार्थना कर रहा है, तुम शुरू से ही उसकी शरण में रहो.....कृपा होती रहेगी.....तब मोह आदि विकारों का असर नहीं होगा। इसीलिए कहा जाता है कि स्वयं के बचाव के लिए प्रभु से प्रार्थना करते रहो। इसका यह मतलब नहीं कि स्वयं की संकल्प शक्ति कुछ नहीं करती। उस से भी मदद मिलती है.....फिर भी प्रार्थना करने में क्या हर्ज है! यदि मोह जैसे विकार को अपने ही दम पर काट सकते हो तो अच्छी बात है.....पर जिनकी इच्छाशक्ति इतनी मजबूत नहीं होती उनके लिए प्रार्थना बहुत बड़ा सहारा होती है।

अब यह समझें कि महापुरुषों की कृपा मिलती कैसे है? उनकी शरण में जाने से। गीता के दूसरे अध्याय में अर्जुन ने कहा कि मैं आपकी शरण में हूँ.....मेरे लिए जो भी कल्याणकारी हो, अनुकरणीय हो, वह मुझे बताइए। उसने शौर्य का प्रतीक गाण्डीव धनुष रख दिया.....आँखों में आँसू भर गए, इतना दीन हो गया कि भीख मांग कर पेट भरने की बात करने लगा। तब उसे श्रीकृष्ण की कृपा मिलती है। वे कहते हैं कि तू मेरा प्रिय है, सखा है। अतः विश्वास कर कि मैं तुझे 'मिल जाऊंगा'.....मैं सच कह रहा हूँ।.....अपने दम खम का अहंकार छोड़ कर उनके भरोसे हो जाओ। शरण में जाने की पहली शर्त ही यह है कि अहंकार का त्याग करो। कृपा प्राप्ति के लिए यही एक सब से सरल मार्ग है।

इस तरह पहली पंक्ति का अर्थ हुआ – हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है.....और मुझे अपनी सनातन स्मृति मिल गई है।

4. मैं स्थिर हो गया हूँ!

अब अर्जुन कहाँ स्थिर हो गया है? अपनी स्मृति में। पहले वह विस्मृति में था। इसलिए विचलित था। उसमें द्वन्द्व था। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे!.....युद्ध में अपने ही सगे संबंधियों को मार दे अथवा सब कुछ छोड़ कर चला जाए! उस वक्त वह देहबुद्धि में फँसा हुआ था। मन एवं बुद्धि के स्तर पर भटक रहा था। युद्ध में इतने लोगों की हत्या!.....नहीं, मैं ऐसा नहीं करूंगा.....भीष्म एवं द्रोणाचार्य को तो कोई मार ही नहीं सकता; फिर युद्ध से क्या लाभ?.....लाखों योद्धाओं की हत्या का पाप लगेगा.....जीतने के बाद भी लोग तो भाइयों व गुरु का हत्यारा ही कहेंगे.....लाखों स्त्रियों को विधवा और बच्चों को अनाथ कर देने का दोषी मैं ही रहूंगा.....हम कृष्ण की तरह ही दूर कहीं नया राज्य भी तो स्थापित कर सकते हैं! इतने योद्धाओं को क्यों मारें? यदि युधिष्ठिर, भीम आदि में से ही कोई मर गया तो मैं माता कुंती को क्या जवाब दूंगा? भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि के रहते हुए युद्ध जीतना असम्भव जितना कठिन है!.....ऐसे विचार उसकी आंतरिक अस्थिरता के ही सूचक हैं। कृष्ण के होते हुए भी वह भीष्म, द्रोण व कर्ण की तरफ से आशंकित था। फिर कृष्ण के कृपामय उपदेश के प्रभाव से यह अस्थिरता दूर हो गई। तब उसने कहा कि मैं अब स्थिर हो गया हूँ.....समझ गया हूँ कि मैं कौन हूँ एवं मुझे क्या करना है!

अर्जुन को इससे पहले स्वयं को तो कभी निर्णय लेना ही नहीं पड़ा – द्रुपद को बांध कर लाया तो गुरु की आज्ञा से..... द्रौपदी के पत्नी पद का विभाजन स्वीकारा तो माता के आदेश से.....कृष्ण की आज्ञा से खाण्डव वन जलाया.....दिव्यास्त्रों के लिए घोर तपस्या भी कृष्ण की सलाह से ही की थी.....और महासंग्राम की घोषणा भी कृष्ण की मंत्रणा से की। किंतु अब उसे युद्ध करना था.....धनुष चलाना था.....युद्ध जीतना था.....सारा भार उसी पर था। तब घबरा गया.....विचलित हो गया.....इतने बड़े युद्ध को जीतने का दायित्व निभाना था। विश्व के अद्वितीय योद्धाओं को पराजित करना था! दूसरी ओर दुर्योधन तो शुरू से ही कर्ण, भीष्म, द्रोण व अश्वत्थामा के भरोसे निश्चिंत था – चारों के पास दिव्यास्त्र थे। उधर पाण्डव सेना अर्जुन के ही भरोसे थी – योद्धाओं की उधर भी कमी नहीं थी लेकिन अकेले दम पर विजय उपलब्ध करा देने वाला महावीर तो पार्थ ही था। इसलिए वह इतना व्याकुल हो गया.....विचलित हो गया.....अधीरता के कारण युद्ध से पलायन की बात कह गया। इतने अधीर और घबराए हुए अर्जुन को युद्ध के लिए पुनः तैयार करने का कितना बड़ा दायित्व निभाना था श्रीकृष्ण को! फिर भी वे शांत रहे। स्वयं को योग की उच्चतम अवस्था में ले गए.....और तब 'व्याकुल, विचलित, अधीर' पार्थ को प्रबोधन किया.....ऐसा उपदेश दिया कि वह धर्मयुद्ध के दायित्व का धनुष उठाने के लिए तत्पर हो गया.....और बोला कि 'करिष्ये वचनं तवं'.....आपके वचन का अब पालन करूंगा.....मैं धर्मयुद्ध के लिए तैयार हूँ।

आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाने वाला मनुष्य फिर किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता है। बोध हो गया कि मैं आत्मा हूँ, फिर ठहर गए। जब तक देह का बोध था तब तक भटकन थी..... दैहिक सुखों के पीछे दौड़ते रहने की भटकन! जन्म जन्मों तक भटकन। लेकिन अब ठहर गए। रिश्तों नातों, सुख दुख, जय पराजय, हानि लाभ आदि के कारण होने वाला विचलन नष्ट हो गया। रजो गुणी, तमोगुणी कर्म पीछे छूट गए। केवल कर्तव्य कर्म रह गए जो अबंधनकारी होते हैं।

अष्टावक्र राजा जनक को कहते हैं कि तू अपना मन मुझे दे दे। ऐसा करते ही जनक को आत्मबोध हो गया.....वह आत्मरूप में ठहर गया। उधर अर्जुन ने कहा कि यह अति चंचल मन तो पकड़ में ही नहीं आता, क्या करूं! वासुदेव बोले कि कुछ मत कर, मेरी शरण में आ जा। उसने वैसा ही किया। बस, हो गया काम। वह उठ कर बोला कि मैं आत्मरूप में स्थिर हो गया हूँ। गौतम बुद्ध ने एक शिष्य को कहा कि अमुक वैश्या के घर में रह कर एक माह तक साधना करो। शिष्य ने ऐसा ही किया। उसकी अडिग स्थिरता से प्रभावित उक्त वैश्या का हृदय परिवर्तन हुआ.....वह बुद्ध की भिक्षुणी हो गई।.....एक संत के पास सिकंदर गया; बोला कि आपकी क्या सेवा करूँ? संत ने कहा कि सामने से हट जा.....धूप आने दे। ऐसी होती है स्थिरता। तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास जी उस से भी अच्छा गाते थे। बादशाह अकबर ने उनका गायन सुना तो आत्मविभोर हो गया। बोला – स्वामीजी! मेरे लिए कोई

आदेश! उन्होंने कहा – यहाँ दोबारा मत आना। इसे कहते हैं आत्मस्वरूप में स्थिर रहना। एक विश्व विख्यात साहित्यकार की बात है। वह बहुत बदसूरत था। उस समय की विश्व सुंदरी ने उसके पास शादी का प्रस्ताव भेजते हुए लिखा कि हमारी संतान आप जैसी विद्वान एवं मेरी तरह सुंदर होगी। उक्त प्रस्ताव को खारिज करते हुए लेखक ने जवाब दिया कि यदि वह तुम्हारी तरह मूर्ख और मेरी जैसी बदशक्ल हो गई तो? सत्य में ठहरा हुआ मनुष्य ऐसा होता है।

दैनिक जीवन में भी ऐसा करें तो कल्याण होगा। आप क्लर्क हैं तो अपनी सीट के कर्तव्य कर्म में स्थिर रहिए। कोई मंत्री है तो उसे प्रजा के प्रति अपने दायित्व बोध में अडिग रहना है तथा जनहितकारी कार्य करने हैं। आज जो चारों तरफ अव्यवस्था दिख रही है उसका मूल कारण यही है कि विविध पदों पर बैठे हुए लोग अपने कर्तव्यबोध से भटक कर स्वार्थसिद्धि की आसक्ति में लगे हुए हैं। जब तक ये सारे मनुष्य आत्मरूप में रहना नहीं सीखेंगे तब तक ये दुखदायी हालात सुधरेंगे नहीं। आत्मबोध में रहने से सांसारिक व आध्यात्मिक, दोनों ही स्तर पर कल्याण होता है। यदि कीर्तन, कथा, तीर्थाटन, जाप आदि से भी ऐसी प्रवृत्ति विकसित नहीं होती, तो ये सब बेकार हैं।.....तो बात क्या हुई!.....मोह नष्ट होगा तो आत्मबोध होगा.....आत्मबोध से मन–बुद्धि स्थिर होंगे..... आंतरिक स्थिरता में रहते हुए कर्म करने से कल्याण होगा। अतः अर्जुन ने कहा कि 'स्थितोस्मि'। तब वह इतने बड़े युद्ध में विजय

का कर्णधार बन सका। अजेय समझे जाने वाले योद्धाओं पर विजय हुई! जिनकी गोद में पल कर बड़े हुए.....जिनके साथ बचपन एवं युवावस्था बिताई उन सब को मार कर मिली विजय! कर्ण की सच्चाई जान कर तो वह बुरी तरह कुण्ठित हो गया था.....फिर भी दूसरे दिन धर्मयुद्ध में अपने दायित्व हेतु प्रवृत्त हुआ।

हिन्दी भाषा के एक महाकवि थे – सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। फटेहाल थे.....कभी झुग्गी झौपड़ी में रहते तो कभी सड़क पर ही सो जाते। फिर भी छायावादी काव्य को धन्य कर गए। भटके नहीं.....टूटे नहीं.....अपने आप में ठहरे हुए थे। लाल बहादुर शास्त्री रेल मंत्री थे.....सिटीबस में बैठ कर मंत्रालय जाते थे.....घर का मकान नहीं था.....एक पैसा रिश्वत का नहीं खाया.....उन्हें आत्मबोध था। आज की दुनियां में भी ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिल जाएंगे.....फिर भी लाखों लोग भटके हुए हैं जो वैश्विक जीवन का पतन कर रहे हैं। इसलिए कृष्ण एवं गीता आज भी प्रासंगिक है।

कृष्ण कौन! कृष्ण यानी कर्तव्य बोध.....कृष्ण अर्थात अनासक्ति.....कृष्ण का मतलब है – अमोह, निर्लोभ, अक्रोध, निरहंकार और निष्काम। हम नहीं कहते कि सारी दुनिया देवकीनंदन कृष्ण की बात माने.....हम तो बस यह समझा रहे हैं कि आप सब आत्मबोध की तरफ जाएँ.....निष्काम भाव से कर्म करें। जो भी ग्रंथ ऐसा प्रबोधन दे या ऐसी प्रेरणा दे, वह कृष्ण–मय है.....गीता के वैचारिक वैभव से युक्त है। जहाँ जहाँ भी

कर्तव्य भाव, निष्कामता, निर्विकार्य आत्मानुभूति और स्थिरता है, वहाँ कृष्ण एवं गीता है। कृष्ण तो निष्काम अवस्था है एवं गीता उस दशा की प्रबोधक है। कृष्ण तो मुक्ति की राह है.....कृष्ण एक वैश्विक सोच है.....एक संकल्प है.....सब में अभेद देखने वाला एक कॉन्सेप्ट है। कंस जैसे आततायी की जेल में पैदा हो कर भी योगेश्वर वाली अवस्था तक पहुँचने वाली विकास यात्रा का नाम है श्रीकृष्ण। जिसने जीव और ब्रह्माण्ड के स्रोत को जान लिया उस ज्ञान का नाम है कृष्ण। ये सारी बातें उन लोगों के लिए हैं जो कहते हैं कि गीता ही क्यों पढ़ें? कृष्ण की ही बात क्यों मानें? हँसी आती है ऐसे लोगों के दुराग्रह पर, जो स्वयं सांसारिकता में फँसे हुए रह कर भी योगेश्वर श्रीकृष्ण के विषय में ऐसी बात करते हैं; जो स्वयं के अज्ञान से मोहित हैं किंतु ज्ञान के विरुद्ध बात करना अपना अधिकार मानते हैं। जिन्होंने कभी गीता पढ़ी ही नहीं या शायद देखी भी नहीं वे लोग कृष्ण के विरुद्ध बात करना चाहते हैं।

आप अवतारों एवं महात्माओं की धूल के बराबर भी नहीं हैं लेकिन उनकी शिक्षाओं में कमी निकालने का प्रयत्न जरूर करेंगे। पहले अर्जुन भी कुछ कुछ ऐसा ही था किंतु जब उसने कृष्ण का विराट एवं चतुर्भुज रूप देखा तो समझ में आया कि वे आत्मा के परमरूप परमात्मा या ब्रह्म हैं.....उन्ही में सृजन का चरम विस्तार ब्रह्माण्ड समाहित है। हम भी यदि संकल्पित हों तो कृष्ण के इस रूप के दर्शन हम भी अपने भीतर 'चिदाकाश' में कर सकते

हैं। तब मोह सहित सारे विकार तत्काल नष्ट हो जाएंगे। हम स्थितप्रज्ञ (स्थिर बुद्धि वाला) हो जाएंगे।

5. सन्देह मिट गया है!

शब्द है.....गतसंदेहः.....सन्देह चला गया है अथवा मिट गया है। कैसा संदेह? ऐसा कि – मैं देह हूँ, मरणशील हूँ, किसी का पुत्र–भाई–पिता–पति–मित्र–शिष्य हूँ, किसी का शत्रु हूँ आदि या निराकार आत्मा हूं। इसके अलावा यह भी कि यदि हम हार गए तो!.....युद्ध में हम ही मर गए तो! इतने लोगों को मारने का पाप लगेगा! यह सब मिट गया। संशय यह कि मैं रक्तपात वाला यह युद्ध करूं या नहीं? अब सही बात समझ में आ गई कि मैं अनश्वर आत्मा हूँ एवं प्रभु की प्रेरणा से इस धर्मयुद्ध में सहभागी होने वाला निमित्त मात्र हूँ। स्पष्ट हो गया कि मैं किसी को नहीं मारूंगा, काल ही मेरे माध्यम से मार काट करेगा। प्रत्यक्ष हो गया कि इनमें से किसी के भी साथ मेरा सनातन संबंध नहीं है। यह भी देख लिया कि कृष्ण ही परमात्मा है। अतः होगा वही जो ये चाहेंगे।

सन्देह के मिटते ही जो निश्चित है, वह ज्ञात हो जाता है। जो तय है, उसे स्वीकारना ही पड़ता है, यह मानते ही निश्चिंता आ जाती है। तब पूरी क्षमता से मनुष्य अपने कार्य में प्रवृत्त हो जाता है।.....जब तक सन्देह है, तब तक दुर्बलता कायम रहती है। मनुष्य की दुर्बलता उसके कर्म की कमजोरी बन जाती है। वह अपनी योग्यता व क्षमता का सार्थक उपयोग नहीं कर पाता है।

कई अन्य शंकाएं अर्जुन की भाँति हमें भी परेशान करती हैं.....भगवान को खुश करने का कौनसा मार्ग सरल है–कर्म, ज्ञान या भक्ति!.....मन तो बहुत अधिक चंचल है, फिर उसे वश में करने के लिए क्यों कहा जाता है ? क्या कृष्ण हर युग में थे? वे कहते हैं कि गीता वाला ज्ञान उन्होंने आदिकाल में सूर्य को भी दिया.....यह कैसे सम्भव है? गीता में इन सब का जवाब है – निज स्वभाव के अनुसार मनुष्य स्वयं के लिए कोई एक मार्ग चुन लेता है.....बार बार अभ्यास करके मन को अनुशासित किया जा सकता है.....कृष्ण यानी ब्रह्म–चेतना है.....जो प्रत्येक युग में अवतार ले कर परम ज्ञान का उपदेश करती है; बस, नाम अलग होते हैं। अर्जुन को हर दृष्टि से, श्रीकृष्ण संतुष्ट करते हैं। तब वह कहता है कि मेरे सारे सन्देह मिट गए हैं। ऐसे ही आम आदमी की भी प्रत्येक शंका का निवारण इस ग्रंथ में है।

.....इधर हम देखते हैं कि आश्रमों में संत महात्माओं के प्रति साधकों व श्रद्धालुओं में सन्देह रह ही जाता है। उनकी सामान्य मनुष्य जैसी जीवन शैली देख कर ऐसा भ्रम हो जाता है। इस कारण ज्यादातर श्रद्धालुओं का उद्धार नहीं हो पाता है। वे मोहित, विस्मृत, विचलित व सन्देहग्रस्त रह जाते हैं। उधर सामान्य मनुष्य का तो पूरा जीवन ही इन विकारों से ग्रस्त रहते हुए पूरा हो जाता है। वस्तुतः देह को ही सच मान लेने से आसक्ति बढ़ती है.....आसक्ति से मोह, मोह से विस्मृति, विस्मृति से विचलन, विचलन से सन्देह और सन्देह से विविध

परेशानियाँ पनपती हैं। परेशानियों से कुण्ठा, कुण्ठा से कई विकृतियाँ।.....बस, ऐसे ही जीवन पूरा हो जाता है। स्वभाव में आ गई असामान्यता हमें समझने ही नहीं देती कि जीवन क्या है? फिर हम सोचते भी नहीं हैं कि हमारा जीवन क्यों है और हमें क्या करना चाहिए? जो हो रहा है, उसे भोगते हुए, हँसते–रोते, गिरते–उठते, लड़ते–झगड़ते और भाग्य को कोसते हुए मर जाते हैं।.....नौकरी या व्यापार, शादी, बच्चे, गुटखा, शराब, रिश्वत, घोटाले, टीवी, गपशप एवं सैर–सपाटा – बस, सामान्यतः यही है। जो इस से अलग हट कर सोचे उसे गीता की जरूरत है। जिसके सामने कोई बड़ा लक्ष्य या चुनौती है, उसे राह दिखाती है गीता..... दुर्योधन की तरह जो खुद को ही सही तथा दूसरों को गलत मान कर चलते हैं उन्हें परिस्थितियाँ पीस देती हैं अथवा मार देती हैं। बचना है तो प्रार्थना कीजिए – हे प्रभो! अपनी शरण में लीजिए और जीवन के सही मार्ग पर अग्रसर कीजिए। यदि कोई हृदय से इतनी सी प्रार्थना करे, तो भी कल्याण हो जाएगा।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि – निमित्त बन कर कर्म करने से दोष नहीं लगता, भोग संस्कार संचित नहीं होते; ये भीष्म ,द्रोण ,कर्ण आदि और सारे सैनिक पहले ही काल द्वारा मारे जा चुके हैं और इसीलिए यहां युद्ध में एकत्र हुए हैं; इसलिए तू पाप की चिंता मत कर; ये सब मरेंगे, इस कारण तेरी विजय निश्चित है, पराजय की शंका मत कर। अर्जुन ने तब ग्यारहवें अध्याय के 51वें श्लोक में कहा कि – अब मै शांतचित्त हूं और

अपने स्वभाव (क्षत्रिय धर्म यानी कर्तव्य के लिए युद्ध करना) में स्थिर हो गया हूं।

6. जो आप कहेंगे वही करूंगा!

अर्जुन की बात है। उसका मोह नष्ट हो गया। स्मृति मिल गई.....बुद्धि सिथर हो गई और सारे सन्देह मिट गए। अब उसने कहा कि – करिष्ये वचनं तवं.....आपने जो कहा मैं वह करूंगा। कृष्ण ने उसे क्या कहा? उन्होंने उसे तीन बार कहा कि उठो, युद्ध करो.....अपना कर्म करो.....

(1) दूसरे अध्याय का तीसरा श्लोक

(2) चौथे अध्याय का 42वां श्लोक

(3) ग्यारहवें अध्याय का 33वां श्लोक

पर उस समय अर्जुन ने उक्त बात नहीं मानी। रथ के पिछवाड़े में बैठा रहा। गीता के अठाहरवें अध्याय का उपदेश सुनने के बाद बोला कि आप जो कहेंगे वही करूंगा। बीच में कृष्ण का विराट रूप भी देखा। देखा कि विपक्ष के सारे महारथी मौत के मुँह में जा रहे हैं। इस से निश्चित हो गया कि पाण्डव जीतेंगे..... पराजय व मृत्यु का सन्देह समाप्त हुआ। फिर कृष्ण बोले कि तू सारे झंझट छोड़ कर मेरी शरण में आ जा.....मैं तुझे सारे पापों से मुक्त कर दूंगा.....विश्वास कर.....तू मुझे ही प्राप्त होगा। इसके बाद ही अर्जुन उठा एवं कहा कि मैं युद्ध करूंगा।

अब समझने की बात है कि हम से कर्म कौन कराएगा! हमें कर्तव्य कर्म के लिए कौन प्रेरित करेगा?.....हमारा स्वभाव ही हमसे कर्म कराता है। अठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते भी हैं कि मनुष्य भले ही कर्म करना नहीं चाहे लेकिन उसका स्वभाव उस से अवश्य ही कर्म करा लेगा.....कौनसा कर्म? उसके वर्ण के अनुसार! (59वां श्लोक)।.....संस्कारों के अनुसार अर्जुन क्षत्रिय था.....युद्ध से विमुख हो रहा था। तब कृष्ण ने यह कहा था कि क्षत्रिय स्वभाव तुझको अंततः युद्ध में प्रवृत्त कर ही देगा।.....हर व्यक्ति पर यह बात लागू होती है। जैसे नशेड़ी नशे के बिना नहीं रह सकता वैसे ही मनुष्य संचित संस्कारों से बने स्वभाव के अनुसार कार्य किए बिना नहीं रह सकता है। महाभारत में कर्ण–परशुराम का एक प्रसंग याद है ना!.....कर्ण की गोद में सिर रखे हुए परशुराम सो रहे थे.....तभी कर्ण की जांघ में एक जहरीला कीड़ा काटते हुए प्रवेश करने लगा। वह उसे हटाने के लिए हिलता तो गुरु की नींद टूट जाती.....अतः कर्ण दर्द को सहन करता रहा। कीड़ा जंघा को चीरता हुआ दूसरी तरफ निकलने लगा। खून की धारा बहने लगी। चिपचिपाहट से परशुराम जी की नींद टूट ही गई। सारा नज़ारा देख कर वे चौंके.....कड़कते हुए बोले कि बता तू कौन है! ब्राह्मण में तो इतना दर्द सहने की क्षमता नहीं होती है.....यह है वर्णगत संस्कारों की विशेषता! कर्ण सूर्यपुत्र था.....इसीलिए उसमें इतनी कष्ट सहिष्णुता थी।

दूसरी बात यह कि सामान्य आदमी को अच्छे कर्म के लिए कौन प्रेरित करता है? हमारी आत्मा! महात्मा अष्टावक्र कहते हैं कि मनुष्य तो स्वयं ब्रह्मरूप है.....उसे किसी अन्य के पास जाने की जरूरत ही नहीं है.....वह स्वयं के इस रूप को जान ले तो वही उसे शुभकर्म की तरफ प्रेरित करता रहेगा। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं अपने भक्त के हृदय में उसकी सहायता के लिए खड़ा हो जाता हूँ। उनका कथन है कि मैं आत्मा नाम से सब के भीतर बैठा हूँ और आत्मा की आवाज के रूप में मैं ही बोलता हूँ। तो प्रत्येक मनुष्य की आत्मा, उसका विवेक, उसका इष्ट आदि उसे अच्छे कार्य के लिए प्रेरित करते हैं। किंतु ज्यादातर मनुष्य रजोगुणी मन–बुद्धि–अहंकार के चंगुल में फँसे हुए कार्य करते हैं। वे त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही आत्मा मान लेते हैं। परिणामस्वरूप गलत काम करते हैं एवं बार बार संकट में फँसते रहते हैं। .....और यह भी सच है कि अच्छे काम करना कौन चाहता है? लोग तो जैसे तैसे पैसा कमाना चाहते हैं, मौज मस्ती चाहते हैं। दुर्योधन, दुःशासन, जयद्रथ, कंस, जरासंध, शकुनी आदि शीर्ष पुरुष इसके उदाहरण हैं। उधर मनुष्य की विश्व में लगभग चार लाख प्रजातियां हैं.....हजारों रीति–रिवाज एवं मान्यताओं वाले..... सही–गलत के चक्रव्यूह में फँस जाता है वह! ऐसे में एक ही रास्ता है कि वह आत्मा की आवाज सुनने का अभ्यास करे। धीरे धीरे वह परिपक्व हो जाएगा.....द्वंद्व की स्थिति में आत्मा की आवाज सुन कर निर्णय ले सकेगा। तब वह कहेगा – मैं वही करूंगा जो आत्मा कहेगी।

सूर्यपुत्र कर्ण जैसा तपस्वी भी महाभारत काल में अन्य कोई नहीं था.....फिर भी वह श्रीकृष्ण की बात नहीं माना.....उनके अवतारी रूप से अवगत था, इसके उपरांत यह स्थिति थी.....इसे क्या कहें! यही कि होनी के आगे बुद्धि घुटने टेक देती है या सकारात्मक संकल्प शक्ति के बिना मनुष्य विपथगामी हो जाता है। देखिए, होनी दो तरह की होती है – सकारात्मक एवं नकारात्मक। सकारात्मक होनी को घटित होने देने में भगवान मदद करते हैं। उधर नकारात्मक होनी का मतलब है, मृत्यु या विनाश। युग परिवर्तन के लिए दुष्टों की मृत्यु एवं दुर्व्यवस्था का नाश जरूरी होता है; इसलिए प्रभु ऐसी होनी को न तो रोकते हैं और न ही बदलते हैं। यही कारण है कि कर्ण, श्रीकृष्ण के सम्पर्क में आ कर भी स्वयं को नहीं बदल सका। उसके बाहरी कान तो भगवान की बात सुनते थे लेकिन अन्दरूनी कान नहीं सुन पाते थे.....प्रभु कृपा बिना वह सुनाई नहीं देगी!.....तब क्या करें? इसका सरल उपाय है सदाचरण।.....भगवान सदाचारी के सारथी हो जाते हैं। तब स्प्रिच्युअल इयर फोन लग जाता है.....आत्मा की ही आवाज सुनाई देती है, अन्य कुछ नहीं। यह बात पढ़ने सुनने से समझ में नहीं आएगी.....अनुभूति जरूरी है।.....और सदाचार ही इसका सरल मार्ग है।

इस तरह गीता हमें सनातन स्मृति उपलब्धि का मार्ग बताती है। गीता हमें मोह से मुक्ति का मार्ग दिखाती है। मोहजन्य अवसाद से मुक्त हो कर कर्तव्य करने की प्रेरणा देती है। भयमुक्त

करती है। पुनर्जन्म से छुटकारे का उपाय बताती है। यह हमें 'तमसो मा ज्योतिर्गमय से मृत्योर्मा अमृतं गमय' तक ले जाती है। सकाम कर्म से निष्काम तक की यात्रा कराती है। भोग से योग का मार्ग प्रशस्त करती है।

जय श्रीकृष्ण!

परिचय - श्री शिव शर्मा

राजकीय महाविद्यालय, देवली (टोंक) के हिन्दी विभाग से सेवानिवृत्त। अध्ययन, लेखन, प्रकाशन की चालीस वर्षीय यात्रा। पत्रकारिता में शताधिक लेख, फीचर्स प्रकाशित; स्तम्भ लेखन व सम्पादन क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य। जिला पत्रकार संघ (अजमेर) एवं एन.एम.एफ.आई. (ऋषिकेश) से पुरस्कृत।

प्रकाशित पुस्तकें –

1. अजमेर; इतिहास एवं पर्यटन 2. पुष्कर; अध्यात्म एवं इतिहास 3. हमारे पूज्य गुरुदेव 4. दशानन चरित 5. गुरु भक्ति की कहानियाँ 6. मोक्ष का सत्य 7. सूफी संत और उनकी कथाएँ 8. कर्मण्येवाधिकारस्ते 9. गीता पाप मोचनी 10. गीता में जीवन की पूर्णता 11. सद्गुरु शरणम् 12. नारी मुक्ति 13. अवतार का रहस्य 14. श्रीकृष्ण से मुलाकात 15. गीता – 150 प्रश्नोत्तर 16. एक श्लोक की गीता 17. संत श्री सेवाराम 18. रूहानी पुरुष 19. श्री राम चरित।

इस पुस्तक से – कृष्ण एक व्यक्ति नहीं हैं; वे कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का साकार रूप हैं। ऐसे ही गीता मात्र एक ग्रंथ नहीं है; वह कर्मवाद की वैश्विक अवधारणा का उपदेशित व लिखित रूप है। जहां जहां भी कर्तव्य भाव, निष्कामता, निर्विकार्य आत्मानुभूति और स्थिरता है, वहाँ कृष्ण एवं गीता है। कृष्ण तो निष्काम अवस्था हैं एवं गीता उस दशा की प्रबोधक है।

Digitization & PDF Compilation

By